चित्रकूटमें कमसे कम ३० लोगोंके परेषण लूस ... वते हुए रामायण ... कुश मेला

5.2
V9

भोपाल, १ जुलाई (भा.)। मध्यप्रदेशमें मानसून सक्रिय हो गया है। पिछले २४ घंटोंके दौरान बस्तर, रायपुर, बिलासपुर और सागर संभागोंके कुछ स्थानोंपर रीवां, जबलपुर, भोपाल, ग्वालियर और चम्बल संभागोंमें एक-दो स्थानोंपर वर्षा हुई।

राजधानी दिल्लीमें भी धूलभरी आंधी तथा मामूली वर्षासे पिछले चार दिनोंकी भीषण गर्मीसे दिल्ली निवासियोंको थोड़ी राहत मिली इससे राजधानीका तापमान भी ८.६ डिग्री सेल्सियस घटकर ३३ डिग्री सेल्सियस हो गया। राजस्थान तथा दक्षिण पाकिस्तानके आसपासके ऊपरी हवाके दबावसे यहां ४० किलोमीटर प्रति घंटेकी रफ्तारसे आंधी आयी।

इस बीच असम और अरुणाचलप्रदेशके आसपासके क्षेत्रोंमें पिछले सप्ताह भारी ... कारण ब्रह्मपुत्र और उसकी सहायक नदियोंमें ... बाढ़ आ जानेसे डिबरुगढ़से डूबरीतककी ... सौ किलोमीटरकी घाटीमें फसलोंको भारी ... हुई है। इस बाढ़के कारण अनेक स्थानोंपर स... संचार व्यवस्था ठप हो गयी ... भी ... प्रभावित हुई। बम्बई महानगरमें पि... २४ घंटेमें हुई वर्षाके कारण आज सड़क औ... यातायात अस्त-व्यस्त हो गया।

...क्रीपर तत्काल रोक ... शासनसे मांग

(लखनऊ कार्यालय)

लखनऊ, १ जुलाई। प्रदेशमें नशीले पदार्थके स्मैक बढ़ते प्रचलनपर आज विधान परिषदमें गंभीर चिंता व्यक्त की गयी। सत्ता पक्षके श्री जगदम्बिकापालने एक ध्यानाकर्षण सूचना देकर बिक्रीपर तत्काल रोक लगाये जानेकी मांग की।

सभापति श्री वीरेन्द्रबहादुर सिंह चन्देलने ...नको इस दिशामें आवश्यक कार्यवाही ... निर्देश दिया। श्री पालने अपनी सूचनामें ... स्मैकके धुएंका जहर युवा पीढ़ीको बड़ी ... अपनी चपेटमें ले रहा है। स्मैकका नशा शराब, भांग तथा अन्य मादक पदार्थोंसे भी ज्यादा नुकसानदेह है। इस नशेका अंत एक तड़पती मौत।

एक बार इसकी आदत पड़नेके बाद छोड़ पाना असंभव सा है। लखनऊमें ही स्मैकका अवैध व्यापार कुछ ही वर्षोंमें तेजीसे फैला है तथा काफी अड्डे पुलिस व प्रशासनकी निगाहमें धूल डालकर धड़ल्लेसे चल रहे हैं। ज्यादातर इसके शिकार बड़े घरोंके बिगड़े नवाब तथा मध्यम परिवारोंके युवा वर्ग हैं।

मिजोरम सुपर वीकली लाटरी

शुद्धि-पत्र

दिनांक १जुलाई.१९८७ के अंक में काशित ११वें ड्रा परिणाम के छठें पुरस्कार में 3058 के स्थान पर 3458, अशुद्ध प्रकाशित गया है कृपया पाठक सुधारकर पढ़ें।

मिजो इंस्टेट वीकली लाटरी

शुद्धि-पत्र

दिनांक ३० जून.१९८७ के अंक में प्रकाशित ड्रा परिणाम के प्रथम पुरस्कार में 3152, C-507359 के स्थान पर 3185, C-757359, तृतीय पुरस्कार में 33 केस्थान पर 52983, चर्तुथ पुरस्कार 7176 के स्थान पर 7776 आठवें पुरस्कार 71 के स्थान पर 63, अशुद्ध प्रकाशित हो या है कृपया पाठक सुधारकर पढ़ें।

म परिषद

लोनी,

दिनांक २६-६-८७

तिथियों को अपरान्ह ३.०० बजे तक के अधिकृत प्रतिनिधि द्वारा उपस्थित भी कार्य पूर्ण

सांस्कृतिक प्रकाशन माला

(एकादश पुष्प)



पत्रों में कठोपनिषद्

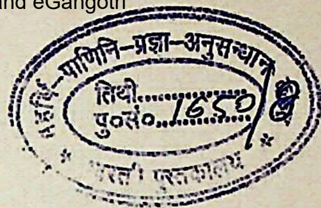
स्वामी आनन्दानन्द

प्रकाशक
योग साधना आश्रम
बापूनगर, जयपुर ३०२००४
(राजस्थान)

प्रथम संस्करण
1976

मूल्य : पांच रुपया

मुद्रक
जयपुर प्रिण्टर्स,
जयपुर



आमुख

स्नातक कक्षा के अध्ययनकाल में उपनिषद् विषयक प्रश्न के उत्तर में परम पूज्य बाबा ने कठोपनिषद् आख्यायिका द्वारा मेरी ज्ञान वृद्धि की प्रचेष्टा की है। मेरी आठ वर्ष पूर्व की अतीत की स्मृति को जागृत करने हेतु मुझको 'पत्रों में कठोपनिषद्' का आमुख लिखने का आदेश मिला है। यह मेरा परम सौभाग्य है कि मुझ को लिखित पत्रावली से रचित पुस्तक की भूमिका मैं ही लिखूँ, किन्तु मैं क्या लिखूँ? मैं तो एक अकिंचन बालिका हूँ। यद्यपि पूज्य बाबा ने मुझे कई डिग्रियां दिलवाई हैं, किन्तु आजकल की पढ़ाई तो केवल डिग्री के लिये होती है, ज्ञान के लिये नहीं। गंगाजल में गंगापूजा को ध्यान में रखते हुये मैंने उनके आदेश को शिरोधार्य किया।

छुट्टियों में मध्यान्हकाल की विश्रामवेला में वे वात्सल्य स्नेह के साथ महापुरुषों की जीवनी, मन को पवित्र करने वाले रामायण, महाभारत, गीता, उपनिषदों, की प्रेरणादायक गाथाओं को सुनाते थे।

पूज्य बाबा आत्मनिष्ठ मूक सेवक हैं। प्रचार-प्रसार से दूर रह कर पीड़ित मानव की सेवा करना ही उनके जप, तप एवं साधना हैं। यदि मैं डिग्रियां नहीं लेकर उनके चरण-प्रान्त में बैठकर उनसे ज्ञान लेती तो मेरे पास ज्ञान का अपार भण्डार हो जाता। दूर से या निकट से उनका अध्ययन करती हूँ तो नचिकेता—यम संवाद की भांति ब्रह्म भवनस्वरूप उनके अन्दर प्रतीत होता है। उनकी अन्त-ज्योति के प्रभाव से आमुख लिखकर 'पत्रों में कठोपनिषद्' का परिचय दे रही हूँ।

उपनिषद् (उप+नि+षद्+क्विप्) "सद्विशरणगत्यावाने" धातु से क्विप् प्रत्यय जोड़ने से निष्पन्न हुआ है। उप का अर्थ समीप, निषद् का अर्थ दीक्षाग्रहण, ब्रह्मविद्या प्राप्ति के लिये गुरू के पास बैठकर वेद की शाखाएँ ब्राह्मण—वह अन्तिम भाग जिसमें आत्मा व पर-

मात्मा आदि का निरूपण हुआ है – वह ही उपनिषद् नाम से अभिहित है। उपनिषद् आध्यात्मविद्या है, जिसके अध्ययन से मुमुक्षु लोगों की अविद्या का नाश होता है। उपनिषद् वह चिर प्रदीप्त ज्ञान दीपक है जो अनन्तकाल से प्रकाश देता आ रहा है।

उपनिषदों की संख्या अगनित है, लेकिन प्रधान रूप में ११ हैं, उनमें कठोपनिषद् अन्यतम है। यह उपनिषद् कृष्णयजुर्वेद की कठशाखा से सम्बन्धित है। इसमें बालक नचिकेता – यम संवाद से ब्रह्मविद्या का विशद विवेचन प्रस्तुत किया गया है। नचिकेता पिता के सर्वजित यज्ञ को तल्लीन होकर देखने लगा, किन्तु यज्ञ के उद्देश्य के विपरीत कार्य को देखकर उसको मन में कष्ट हुआ कि पिताजी इस श्रेष्ठतम सर्वजित यज्ञ में जीर्ण-शीर्ण गो का दान क्यों कर रहे हैं ? अच्छी दुधारू गो अपने पास रख रहे हैं। क्या इससे सर्वजित यज्ञ का उद्देश्य पूरा होगा ? नहीं! कदापि नहीं! "इदम् न मम" की यह उदात्तभावना कैसे पूरी होगी ? इन सब विचारों के प्रवाह से उद्वेलित होकर उसने पिता से कहा, 'कस्मै माँ दास्यसि" अर्थात् मुझे किसको देंगे ? पिता ने खीझकर कहा "मृत्यवे तां ददामि" अर्थात् मैं तुझे यमराज को दूँगा। किंकर्तव्यविमूढ़ बालक यम के पास गये। लेकिन यमराज कहीं अन्यत्र गये हुये थे। जब तक यमराज की उन से भेंट नहीं हुयी तब तक अन्न-जल कुछ भी ग्रहण नहीं किया। तीन दिन पश्चात् यम लौटकर आये। उन्होंने बालक नचिकेता को तीन दिन अनाहार में रहने हेतु तीन वर मांगने को कहा। बालक ने सर्वप्रथम 'पितृपरितोष' वर माँगा। दूसरा 'स्वर्गलोक का साधनभूत अग्नि' के संबंध में था। किन्तु इससे यह तात्पर्य नहीं समझना चाहिये कि वे स्वर्गसुख के इच्छुक थे। जिस प्रकार पहले वर में पिता की सुखकामना की वैसे ही दूसरे वर में विश्वजनों की सुख की भावना निहित थी।

तीसरा वर आत्मज्ञान का था। अर्थात् मनुष्य क्यों जन्म लेता है ? मृत्यु के बाद कहां जाता है ? आत्मा क्या है ? आदि से संबंधित था। यह प्रश्न केवल महत्वपूर्ण ही नहीं अपितु यमराज को छोड़कर अन्य देवताओं को भी अज्ञात था। इस हेतु अनेक प्रलोभनों के द्वारा यमराज नचिकेता को अन्य वर मांगने को प्रेरित करते रहे, किंतु बालक नचिकेता ने प्रलोभनों से प्रलोभित नहीं होकर उक्त वर देने के



लिये यमराज को वाध्य किया। नचिकेता की दृढ़ता एवं निष्ठा देख कर यमराज बहुत प्रसन्न हुये एवं अतीव गुह्यतम आत्मज्ञान से केवल नचिकेता को ही नहीं समग्र विश्व को इस प्रकार लाभान्वित किया :–

"आत्मा अजर-अमर-नित्य-शाश्वत है। जीव न तो प्राण से जीवित रहता है न अपान से। अपितु दोनों का आधार ही जीव की स्थिति है। कर्म व उपार्जित विज्ञान के सहारे जीव को मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि योनियों में भ्रमण करना पड़ता है। शयन, जागरण, जन्म, मृत्यु आदि का शिकार होना शरीर का धर्म है। आत्मा न सोती है न मरती है। जो अगुष्ठ प्रमाण पुरुष सर्वदा जागृत रहता है वही ब्रह्म है। स्वयंभू ब्रह्म, सूर्य, चन्द्र, वायु आदि के प्रभाव के परे है। वरन् ये सब ब्रह्म की शक्ति से शक्तिमान हैं। यथा–

संदृशे तिष्ठति रूपमस्य
न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥"

कठो–अ २, व ३, श्लोक ९

आत्मा दृष्टि से अगोचर है। धर्मराज यम ने मन को नियमन द्वारा योगस्थ होकर आत्मदर्शन करके अमरत्व प्राप्ति का संकेत आत्मतत्व अन्वेशणकारी नचिकेता को दिया है।

योग विभिन्न साधनों द्वारा लोकमानस को अतीन्द्रिय जगत में पहुंचाने का आधार है। ऋषि पातंजलि ने योग को यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि इन आठ भागों में विभक्त करके योगस्थ होने का उपाय बताया है, किन्तु आजकल केवल आसन को ही योग नाम से अभिहित किया जा रहा है, जिसके फलस्वरूप लोग देहबुद्धि के अधीन होकर रह रहे हैं। जन्म-मृत्यु के परे उठ नहीं पा रहे हैं। योगस्थ होने का आधार श्रवण, मनन, निदिध्यासन हैं। इसके लिए नन्हें भाई नचिकेता की तरह निःस्वार्थ, निर्लोभ, निःस्पृह होकर निष्ठा और धैर्य के साथ प्राचीन संस्कृति को हृदयंगम करना पड़ेगा।

भगवान बुद्ध की अमरवाणी :

बुद्धं शरणं गच्छामि ।
धर्मं शरणं गच्छामि ।
संघं शरणं गच्छामि ।।

अर्थात् ज्ञानी के पदचिन्हों पर चलना, सत्य मार्ग का अवलम्बन करना, संगठित होकर एक साथ आगे बढ़ना इसी ओर संकेत करती है ।

महात्मा गांधी का सर्वोदय व स्वराज्य की परिकल्पना का उद्देश्य भी विश्व-मानव का एक साथ कदम से कदम मिलाकर सम-रूप में उन्नत होना है । मेरे पूज्य गुरुपिता 'बाबा' सर्वदा मुझे यह प्रेरणा दे दी कि "किसी को पीछे धकेल के नहीं बल्कि एक दूसरे का हाथ पकड़कर आगे बढ़ो । स्थायी तथा विश्वराष्ट्र गठन करने का भार तुम सब विद्यार्थी समुदाय पर ही निर्भर करता है ।"

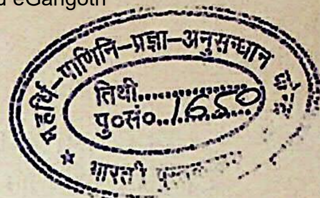
अतः मैं भी एक विद्यार्थिनी होने के नाते विश्व के सब भाई बहिनों से निवेदन करती हूं कि चलें हम सब नन्हें नचिकेता की तरह दुरतिक्रमनीय यमपुरी, अर्थात् न्याय के राज्य में पहुँचकर यम को हृदय से जय करें ! न्याय पर आधारित विश्वराष्ट्र स्थापन करने हेतु अपनी आहुति प्रदान करें !

संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनासि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।।

ऋ–१०/१९१/२

दीपावली
१९७६

योगमाया



दो शब्द

"पत्रों में कठोपनिषद्" पत्रावली के पुस्तक रूप का आधार मेरी मानस कन्या 'योग माया' है। प्रायः आठ वर्ष पूर्व वालिका पण्डित श्री हीरालाल शास्त्रीजी की अमर कीर्ति वनस्थली विद्यापीठ में स्नातक कक्षा की विद्यार्थिनी थी। अन्यान्य विषयों के साथ वालिका का दर्शन विषय भी एक था। (संस्कृत में एम० ए० एवं व्याकरणाचार्य समाप्त करने के पश्चात् वर्तमान समय में ऋग्वेद पर शोध कार्य कर रही है)।

स्वभावतः वालिका आत्मनिष्ठ है। कक्षा में दर्शन विषयक पाठ से वालिका की आत्मज्ञान की जिज्ञासा तीव्र होती गयी, किन्तु वर्तमान शिक्षा पद्धति और प्राचीन शिक्षा पद्धति में वहुत अन्तर है। तव गुरुकुल प्रथा थी। गुरु शिष्य स्वतः ही पाठ्यविषय की गहराई तक चले जाते थे। तत्कालीन विद्यादान आजीविका के लिये नहीं था। गुरु-शिष्य दोनों की ज्ञान वृद्धि करना ही पठन-पाठन का उद्देश्य था, किन्तु आजकल प्राचीन गुरुकुल प्रथा के स्थान पर वर्तमान तथा पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली अर्थ उपार्जन का आधार वन गयी है। आजीविका व अर्थ उपार्जन मुख्य और विद्यादान गौण हो जाने के फलस्वरूप गुरु-शिष्य का पवित्र सम्बन्ध नहीं रहा। छात्र-छात्राओं की ज्ञान पिपासा की तृप्ति नहीं होती।

यद्यपि वनस्थली विद्यापीठ के संस्थापक श्रीमान शास्त्रीजी ने गुरुकुल प्रथा को ध्यान में रखते हुये शिक्षण संस्था की स्थापना की है, किन्तु सरकारी अनुदान के बंधन में रह कर लक्ष्य को मूर्तरूप देना संभव नहीं हुआ। इस हेतु बालिका की जिज्ञासा शान्त करने के सिलसिले में कठोपनिषद् संबंधित पत्रालाप चलता रहा।

बालिका के स्नातक होने के पश्चात् स्नातकोत्तर कक्षा में अध्ययन-शील होने के काल में रतलाम निवासी भक्त प्रवर श्री ऊँकारचन्द जैन एम. ए., बी. एड., साहित्यरत्न अध्यापक महोदय का जयपुर में

आगमन हुआ था। उन्होंने इधर-उधर बिखरे हुये पत्रों को शृंखलाबद्ध करके पुस्तक का रूप देने का अथक परिश्रम किया है, इसके लिये मैं उनका बहुत आभारी हूँ।

मैं राजस्थान सरकार द्वारा परिचालित भारत में एकमात्र सरकारी यौगिक संस्था "योगिक चिकित्सा व अनुसंधान केन्द्र" का योग प्रभारी होने के कारण देश-विदेशों के योग मुमुक्षुओं की अभिलाषा के अनुसार योग और स्वास्थ्य विषयक पुस्तक समूह रचना में व्यस्त हो गया। इस हेतु 'पत्रों में कठोपनिषद्' यह पुस्तक प्रकाशित करने का अवसर नहीं मिला। ब्रह्मतत्व व आत्मज्ञान में पूर्ण कठोपनिषद् की विषयवस्तु बड़ी ही जटिल है—अथच इस उपनिषद् का मुख्य नायक ९/१० वर्ष का एक छोटा बालक और पत्रों में कठोपनिषद् की नायिका भी स्नातक कक्षा की एक बालिका है। श्लोकादि एवं तत्वों को यथावत रखते हुये पौराणिक कहानियों के द्वारा बालिका को सहजरूप में समझाने का प्रयास किया है तथापि भाषा एवं मूल तत्व दुर्बोध्य रह गया होगा। आत्मतत्व ज्ञान अन्वेषनकारी बालक-बालिका देव भाषा संस्कृत की मर्यादा को ध्यान में रखते हुये जटिल विषयवस्तु को समझने का कष्ट स्वीकार करेंगे, आशा करता हूँ।

महाज्ञान का आधार वेद का नवनीत उपनिषद् है। मानव आत्मा का परम् गुह्यतम् रहस्य उपनिषदों का अगणित मन्त्र समूह सदियों से विश्वजनों को अमृत स्वरूप वितरित करते आ रहा है।

भारतीय संस्कृति धर्म पर आधारित है। मानव जीवन का पाथेय धर्म, देश, काल, जाति, वर्ण, लिंग के परे है। वेद, उपनिषद्, गीता, भागवंत आदि ग्रन्थ समूह किसी धर्म विशेष के नहीं हैं; ये तो सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् को उपलब्ध करने का मन्दाकिनी प्रवाह है। यह प्रवाह युग-युग से चला आ रहा है और युग-युग तक चलता रहेगा। क्षणभँगुर मनुष्य का कर्तव्य है कि इस पूत प्रवाह में अपने को प्रवाहित करके प्रवाह के उद्गम स्थान तक पहुँचा दे; जिससे अनादि अनन्त ज्योतिर्मय स्वरूप चिदानन्द घन अरूप के रूप परमात्मा के साथ एकाकार होने का आनन्द उपभोग किया जा सके।

महाज्ञान के तृष्णातुर बालक नचिकेता के तृष्णा निवारण-कारी धर्मराज यम के प्रसाद स्वरूप कठोपनिषद् को भविष्य में भारत के भाग्यनियंता छात्र-छात्रा समुदाय ग्रहण करके हमारी संस्कृति को मर्यादित करेंगे, यह है मेरी विनति ! !

ॐ तत् सत् ।

जन्माष्टमी, १९७६ — आनन्दानन्द

पत्रों में कठोपनिषद्

पत्र संख्या – १

चि० भुलु !

मंगलानुशासनम् ।

आशा है, श्रीभगवान की कृपा से तुम कुशलपूर्वक होगी।

मेरी प्यारी बच्ची। तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ। उपनिषद् के विषय में तुम्हारी उत्सुकता देखकर मुझे बहुत हर्ष हो रहा है, क्योंकि आजकल के बालक-बालिकाओं में धार्मिक तथा मानवीय प्रवृत्तियों का होना बहुत दुर्लभ है। अवश्य, उपनिषद् किसी धर्म विशेष का नहीं, वह तो विश्वजनीन है। केवल उपनिषद् ही नहीं अपितु हिन्दूशास्त्र के मूल ग्रन्थ वेद, गीता, पुराण, भागवत् आदि सभी मानव कल्याण के लिये सम्पादित हुए हैं। प्राचीन काल में न तो कोई जातिभेद था, न कोई वर्णव्यवस्था तथा न कोई सम्प्रदाय-विभाग था। एक ही सृष्टिकर्त्ता द्वारा सृष्ट हम सब एक ही माता-पिता की संतान-स्वरूप हैं। हिन्दू धर्म एक सार्वभौम धर्म है। न इसका क्षय है, न वृद्धि। क्षय, वृद्धि उसी की होती है, जिसकी सीमा होती है एवं जन्म-मृत्यु है। हमारा धर्म तो बच्ची ! स्वयंभू-अनादि-अनंत-असीम-कामधेनु है। जब जो जितना चाहे पूर्णरूपेण प्राप्त कर सकता है।

भुलु! तुम्हें ज्ञात होगा कि ऋग्, साम, यजु, और अथर्व चारों वेद अति प्राचीन ग्रन्थ हैं। इनमें से ऋग्वेद तो पृथ्वी का प्राचीनतम ग्रंथ माना जाता है जिसे, श्रद्धालु लोग तो भगवान-मुख निःसृत वाणी कहकर अपने को गौरवान्वित समझते हैं। इन वेदों का रचयिता कौन है ? कोई कहता है कि एक ऋषि ने रचना की है, किसी की धारणा है कि कई ऋषियों ने परम्परानुसार इन्हें रचित किये हैं। कुछ भी हो, हमें इस विवाद में नहीं पड़ना है। हमें तो मधु का स्वाद तथा गुण ग्रहण करना है। किस मधुमखी ने किस पुष्प से शहद एकत्र किया है, हमें इससे क्या प्रयोजन ? प्राप्त मधु का स्वाद एवं

गुण लेकर हम दोनों पिता-पुत्री अपने को तृप्त कर लें एवं अन्य जनों को भी निमंत्रित करें।

बस, आज यहीं तक। निमंत्रित जनों के आने पर पुनः प्रारंभ करेंगे, हां न, बच्ची !

भगवान तुम्हें आत्मज्ञानार्थ प्रेरित करें !

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्र संख्या – २

चि० भुलु !

मंगलानुशासनम्।

आशा है प्रभु की अनुकम्पा से तुम स्वस्थ एवं प्रसन्न होगी।

उस दिन के पत्र में, वेदों के प्रसंग में लिखा था। प्राचीन ग्रंथ वेदों को विषयानुक्रम से कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड में विभक्त किया गया है। वेदों के साथ-साथ तुमने वेदान्त का नाम भी सुना होगा। वीर संन्यासी स्वामी विवेकानन्दजी ने सन् १८९३ में शिकागो विश्व-धर्म-सम्मेलन में वेदान्त तथा उपनिषद् की उद्घोष वाणी द्वारा भारत तथा हिन्दू धर्म की ध्वजा का सर्वोपरि उड्डयन किया था। यह तो तुम्हें भली प्रकार ज्ञात है कि वेदान्त वेद का अंतिम और परिश्रुत ज्ञान है अर्थात् दही के बारम्बार मंथन द्वारा जिस प्रकार नवनीत तैयार किया जाता है, उसी प्रकार वेद के अनवरत मनन के द्वारा जो अनुपम सिद्धान्त निश्चित हो गये हैं वे ही ज्ञान-कण तथा उपनिषद् नाम से अभिहित हैं।

बस, आज यहीं तक।

भगवान तुम्हारा कल्याण करें !

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्र संख्या – ३

चि० भुलु !

मंगलानुशासनम् ।

आशा है प्रभु की कृपा से तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक होगा ।

आज पुनः पिछले दिन के प्रसंग में लिख रहा हूँ । अब देखो, यह मनन क्यों और कैसे हुआ ? उपनिषद् का अर्थ है – उप+निषद् अर्थात् गुरु के समीप बैठना । तुमने इतिहास में पढ़ा होगा कि प्राचीन भारत के सामाजिक जीवन में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम प्रचलित थे । प्रथम २५ वर्ष तक गुरु-आश्रम में रहकर ब्रह्मचर्य के अवलम्बन द्वारा विद्या तथा वेद का अध्ययन चलता था । अध्ययन समाप्त होने के पश्चात् गुरु-आदेशानुसार गृहस्थाश्रम में प्रवेश होता था । संयम के साथ ५० वर्ष की आयु तक गृहस्थ धर्म के पालन के पश्चात् पुत्रादि के ऊपर ऐहिक सम्पत्ति का भार सौंपकर वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश किया जाता था । इस आश्रम में गृह का मोह त्यागकर समाज सेवा करते थे । इसके पश्चात् ७५ वर्ष की अवस्था में संन्यास ले लिया जाता था ।

तुम्हें यह भी ज्ञात होगा कि हमारे ऋषि-मुनि गहन अरण्य में रहकर आत्मचिंतन द्वारा उपलब्ध ज्ञान भण्डार को मानव कल्याण के निमित्त दान करते थे । वे वानप्रस्थी लोग महाज्ञानी ऋषि-मुनियों की चरण-छाया में बैठ कर सत्संग का लाभ उठाते थे । उस सत्संग में जो मनन होता था उससे आत्मतत्व-ज्ञान, ब्रह्मज्ञान के निष्कर्ष जब कभी निश्चित हो जाते थे, तब उन्हें सूक्तरूप में माना जाता था । उस सिद्धान्त एवं शाखा को उपनिषद् नाम से अभिहित किया जाता था । इस प्रकार से अनेक उपनिषदों का सृजन हुआ । कितने सृजन हुए हैं, संख्या में अनेक मतभेद हैं । जो भी हो, मैं निम्न कुछ उपनिषदों के नाम दे रहा हूँ, जो कि वर्तमान में सहज उपलब्ध हैं :–

१–ईशोपनिषद्, २–कठोपनिषद्, ३–केनोपनिषद्, ४–बृहदारण्यक उपनिषद्, ५–छांदोग्य उपनिषद्, ६–प्रश्नोपनिषद्, ७–मुण्डकोपनिषद्, ८–माण्डुक्योपनिषद्, ९–तैत्तरीय उपनिषद्, १०–एत्तेरीयोपनिषद्, ११–श्वेताश्वतरोपनिषद् ।

उपर्युक्त उपनिषदों में से, मैं तुम्हारे लिए कठोपनिषद् की समीक्षा प्रस्तुत करूंगा। तुम प्रश्न कर सकती हो कि इतने उपनिषद् होते हुए भी आपने कठोपनिषद् ही क्यों चुना है? हां बच्ची! तुम छोटी हो न? उपनिषद् के विषय में तुम्हारी जिज्ञासा जिस प्रकार सराहनीय है, उसी प्रकार उक्त उपनिषद् तुमसे भी छोटे एक बालक के प्रश्न से संबंधित है।

भगवान तुम्हें शक्ति दें!

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्र संख्या – ४

चि० भुलु!

मंगलानुशासनम्।

आशा है भगवान के अनुग्रह से तुम कुशलपूर्वक होगी।

बेटा! उस दिन तुमको लिखा था, अगली बार कठोनिषद् के विषय में लिखूंगा, किन्तु आज कठोपनिषद् प्रारंभ न करके ईशोपनिषद् के विषय में उल्लेख कर रहा हूँ। यह इसलिये कि यह उपनिषद् प्राचीन अर्थात् प्रथम उपनिषद् माना जाता है।

पिछले पत्र में तुम्हें ज्ञात हो गया होगा कि उपनिषद् महाज्ञानी ऋषि-मुनियों के आत्मतत्व तथा ब्रह्मज्ञान का अवदान है। ब्रह्मज्ञान का सरल अर्थ यह है कि सृष्ट सब कुछ ही ब्रह्म अर्थात् भगवान है। अतः समग्र प्राणियों की सेवा के लिये आत्मोत्सर्ग करना ही मानव का श्रेष्ठ धर्म है।

ईशोपनिषद् के प्रथम एवं अंतिम श्लोक से तुम्हें ज्ञात हो जायगा कि हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने विश्व-मानवता की पूजा के लिये कैसा प्रेरणास्पद आह्वान किया?

प्रथम श्लोक–

ओम् ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥ १॥

इस श्लोक का भावार्थ यह है कि त्याग के द्वारा ही भोग करना। संसार नाशवान अर्थात् अस्थायी है। इस नश्वर संसार में सर्वत्र एवं समस्त पदार्थ परमात्मा या ईश्वर से व्याप्त हैं। गहन अरण्य के कोने से कोने, पर्वत-कंदर से विशाल समुद्र तक सर्वत्र सभी कुछ में परमेश्वर विद्यमान हैं। अतः प्रत्येक मनुष्य को भी सभी में भगवान का अस्तित्व स्वीकार करके पाप से निवृत्त होना चाहिये। छिपाकर कुछ न करें तथा किसी का धन हरण करने का प्रयत्न न करें। दूसरे को धन, ऐश्वर्य, भोग करते देखकर कभी प्राप्त करने का लोभ न करें। लोभ से पाप होता है तथा पाप से मृत्यु होती है।

हां बेटा। धन की कामना लोगों की होती है, किन्तु धन से मोक्ष प्राप्त नहीं होता। पवित्र ग्रंथ वेद में भी धन से मोक्ष के संबंध का कोई उल्लेख नहीं है। आत्मचिंतन तथा वैराग्य ही मुक्ति का साधन है। वैराग्य शब्द हो सकता है, तुम्हारे लिये नवीन हो। वैराग्य का सहज अर्थ है नाशवान पदार्थ के लिये कामना का त्याग। एकमात्र अविनाशी अर्थात् स्थायी परमब्रह्म (भगवान) ही है। जो लोग इस परम धन को प्राप्त करने की प्रचेष्टा त्यागकर पार्थिव, नाशवान् वस्तुओं को पाने के लिये अग्रसर होते हैं, वे संसार की विभिन्न उलझनों में फंस जाते हैं। तुमने इतिहास में पढ़ा होगा कि लड़ाई झगड़े का मूल कारण दूसरों का अधिकार छीनना तथा सम्पत्ति बलात् अपने अधिकार में लेना है। यदि मनुष्य केवल उपर्युक्त श्लोक के अनुसार अपना जीवन बना लें तो संसार का सब कलह ही निर्मूल हो जायगा। पुलिस, सेना, न्यायालय, लड़ाई-झगड़ा तथा युद्ध का प्रयोजन ही नहीं रहेगा। संसार त्रुटि मुक्त रहेगा एवं मनुष्य इस मर्त्य-लोक में ही स्वर्गीय आनन्द उपभोग कर सकेंगे।

इस प्रसंग में अगले पत्र में महर्षि याज्ञवल्क्य की धर्मपत्नी मैत्रेयी देवी का आख्यान लिखूंगा। बस, आज यहीं तक।

भगवान तुम्हें सद्बुद्धि प्रदान करें!

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्र संख्या – ५

चि० भुलु !

मंगलानुशासनम् ।

आशा है प्रभु की कृपा से तुम कुशल से होगी ।

कुछ दिन पूर्व तुम्हें लिखा था कि अगली बार महर्षि याज्ञवल्क्य की धर्मपत्नी मैत्रेयी देवी के संबंध में लिखूंगा ।

अति प्राचीन काल की बात है । समस्त शास्त्र तथा वेदों में पंडित याज्ञवल्क्य नाम के ब्राह्मण का उल्लेख मिलता है । मैत्रेयी और कात्यायनी नाम की, उनकी दो धर्मपत्नियां थीं । इन दोनों में से मैत्रेयी भगवान् अर्थात् परब्रह्म के प्रति अशेष भक्ति तथा विश्वास रखती थी और कात्यायनी की साधारण स्त्रियों की भांति संसार के प्रति आसक्ति थी । वेदज्ञ ब्राह्मण याज्ञवल्क्य थे – आत्म-तत्त्वज्ञ वैरागी । वैरागी से गृहस्थी चल नहीं सकती, क्योंकि संसार के मायाजाल में रहकर परब्रह्म-लाभ नहीं हो सकता । अतः वे सन्यास लेने को तत्पर होगये । तुम पूछ सकती हो कि गृहस्थाश्रम के उपरांत वानप्रस्थ फिर सन्यासाश्रम आता है, हां, बच्ची ! यह भी ठीक है । किन्तु कोई चाहे तो वानप्रस्थ में नहीं रहकर सीधा सन्यास भी ग्रहण कर सकता है । क्योंकि वानप्रस्थ आश्रम में घर-संसार के साथ सम्पर्क नहीं टूटता । स्त्री-पुत्रादि के साथ सम्पर्क बना रहता है । भोजनादि की सभी वस्तुएं घर से प्राप्त होती हैं एवं गृहस्थ विषय में सब प्रकार का परामर्श देता रहता है । सन्यास लेने के पश्चात् घर-परिवार, परिजन के साथ कोई सम्पर्क नहीं रहता । व्यक्तिगत स्वार्थ सब ही कुछ त्यागने पड़ते हैं । समग्र विश्व को आत्मवत् मानना पड़ता है । हां, बेटा ! कोई चाहे तो गृहस्थाश्रम में न जाकर बाल्यावस्था में सीधे सन्यास ले सकता है । इसे "विद्युत् सन्यास" कहा जाता है । शुक, सनकादि ऋषिकुमार जन्मजात सन्यासी थे, उनके विषय में समयानुसार लिखूंगा ।

बस, आज यहीं तक ।

भगवान तुम्हारा कल्याण करें !

आशीर्वाद के साथ,

बाबा

पत्र संख्या – ६

चि० भुलु !

मंगलानुशासनम् ।

आशा है ईश्वरानुग्रह से तुम प्रसन्नतापूर्वक कर्त्तव्य निभा रही होगी ।

उस दिन महर्षि याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी के विषय में लिखते हुए "विद्युत् सन्यास" के प्रसंग का उल्लेख किया था । आज पुनः मैत्रेयी प्रसंग पर ही चर्चा कर रहा हूं । ब्राह्मण याज्ञवल्क्य के सन्यास लेने के पूर्व उन्होंने अपनी दोनों पत्नियों को बुलाकर कहा, "मैं अब गृहस्थाश्रम को त्यागकर सन्यास ग्रहण करना चाहता हूं । मेरी इच्छा है कि घर में जो कुछ सम्पत्ति है उसे तुम दोनों में बराबर बांट दूं ताकि मेरे चले जाने के पश्चात् इस सम्पत्ति के लिये आपस में विवाद उत्पन्न न हो, तथा शांति से रह सको ।"

तुम्हें पहले ही बताया था कि मैत्रेयी भगवत्-विश्वासी, आत्म तत्वज्ञ थी । पति की बात सुनकर मैत्रेयी ने अपने मन में सोचा कि मनुष्य क्षुद्र से वृहद् में जाते हैं, अपने पास जो वस्तु या सम्पत्ति होती है उसे त्यागने के लिये तभी तैयार होने की स्थिति आती है जबकि उससे अधिक मूल्यवान सम्पत्ति मिलती है, अथवा मिलने की संभावना होती है । हम दोनों सुन्दरी, रूपवती पत्नियां हैं । लोकमानस में उनकी ख्याति फैली हुई है । मान, यश व धनादि का कोई अभाव नहीं है, जिससे कि अन्य से तुलना की जा सके । इतना रहते हुए भी वे सर्वस्व त्याग रहे हैं, क्यों ? इससे अधिक मूल्यवान वस्तु उन्हें मिली होगी या मिलने की संभावना बनी होगी, जिसकी तुलना में वर्तमान सम्पत्ति तुच्छ है तथा संभावित सम्पत्ति या वस्तु परमधन है । हो सकता है कि जन्म-मरण के बंधन से मुक्ति-लाभ अमृत-तत्व स्वरूप होगा । यह सोचकर मैत्रेयी ने साहसपूर्वक पति से कहा-"भगवन् ! आप जो धन हम दोनों को बंटवारा करके देना चाहते हैं, क्या उससे परमात्मा की प्राप्ति संभव है ?" याज्ञवल्क्य ने उत्तर में कहा-"नहीं ।" फिर मैत्रेयी ने पुनः पूछा-"ससागरा धरणी के समग्र धन सम्पत्ति के बदले में अमृत-तत्व प्राप्त होगा ?" याज्ञवल्क्य ने कहा-"नहीं । नहीं !! पृथ्वी की सारी धन-सम्पत्ति

की प्राप्ति से तुम धनी बन सकती हो, साम्राज्ञी बन सकती हो, परन्तु उससे अमृत-तत्व कभी प्राप्त नहीं हो सकता।"

येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्यां,
यदेव भगवान् वेद तदेव मे ब्रूहीति।"

वृहदारण्यकोपनिषद, अध्याय ४, श्लोक ४

"जिससे मुझे अमृत-तत्व प्राप्त न हो सके, उसे लेकर मैं क्या करूंगी। आप जिस परमधन की प्राप्ति के लिये यह सब तुच्छ समझ-कर त्याग रहे हैं, उस परमधन के विषय में मुझे बताइये, तथा प्राप्त करने में सहायता दीजिये, मैं आपकी अर्द्धांगिनी हूं न ?" यह उक्ति सवेग मैत्रेयी ने पति के समक्ष प्रस्तुत की –

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मामृतं गमय,
अविराविमोएधि, रुद्र येत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्।

बेटा ! नारी प्रकृति है, शक्तिमयी है। सृष्टि-स्थिति प्रलयं-कारिणी है। सर्वकाल, सर्वयुग में नारी पूज्या है। मनुस्मृति में उल्लेख है – "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।" विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती नारी है। वे देव, दानव, मानव सब की पूजा सत्ययुग से अब तक पा रही हैं। मैत्रेयी भी नारी थी। ब्रह्मज्ञान का निष्कर्ष – उपनिषद् की रचना अनेक ऋषि-मुनियों ने की है, किन्तु एक नारी ने जो प्रश्न किया उसे मैं तो कहूंगा कि वह सभी उपनिषद् का निष्कर्ष है। इसके विषय में विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ने अपने उद्गार निम्न शब्दों में व्यक्त किये हैं :–

"उपनिषद् में हमने पुरुष-कण्ठ से तो अनेक गंभीर लाभदायक वाक्य सुने हैं, किन्तु स्त्री-कण्ठ से केवल यही गंभीर तथा उदात्त प्रार्थना निःसृत हुई है। हम यथार्थ में क्या चाहते हैं और क्या नहीं ! उसकी एकाग्र अनुभूति का प्रकाश एक प्रेम-कातर रमणी के हृदय से अत्यन्त स्वाभाविक रूप में सहज भाव में पाया है। हे सत्य ! हमें समस्त असत्य से हटाकर अपने बीच ले जाओ, ऐसा नहीं होने से हमारा प्रेम उपवासी रह जायगा। हे ज्योति ! गंभीर अंधकार से निकालकर हमें अपने भीतर ले जाओ, ऐसा नहीं होने से हमारा प्रेम कारावासी होकर ही रहेगा। हे अमृत ! निरन्तर मृत्यु से बचाकर हमें अपने अन्तर में रख लो, नहीं तो हमारा प्रेम आसन्न

रात्रि के पथिक के समान निराश्रय होकर मारा-मारा फिरेगा। हे प्रकाश ! तुम हममें प्रकाशित हो, उससे ही हमारा प्रेम सार्थक हो जायगा। आविरावीमाएधी, हे आविः ! हे प्रकाश ! तुम तो चिर प्रकाश हो, किन्तु तुम एक वार हमारे होकर प्रकाश में आओ अर्थात् तुम्हारा प्रकाश हमसे पूर्णता प्राप्त करे। हे रुद्र ! हे भयानक ! आप पाप के अन्धकार में विरह रूपी दुःसह रुद्र हो ! यत्ते दक्षिण मुखं, अपने प्रसन्न सुन्दर मुख का, अपने प्रेमोमय मुख का मुझे दर्शन दो। तेन मां पाहि नित्यं, उसके दर्शन कराकर हमारी नित्य रक्षा करो। हमारा त्राण करो। हमें नित्यकाल के समान रक्षा करके रखो। आपके प्रेम का प्रकाश ही, आपकी प्रसन्नता ही, हमारी अनंतकालीन परित्राण बनेगी।

हे तपस्विनी मैत्रेयी ! आओ आज संसार के उपकरण-पीड़ित हृदय में अपने पवित्र चरण युगल स्थापित कर दो। अपनी यह अमृत होने की प्रार्थना, अपने मृत्युहीन मधुर कण्ठ से हमारे हृदय में उच्चारण करा दो, फलस्वरूप नित्यकाल में किस प्रकार रक्षा होगी, ऐसा सन्देह लेशमात्र भी हमारे मन में स्थान न पा सके।"

— रवीन्द्रनाथ —

"शांति निकेतन" पृष्ठ सं०—५३

ईशोपनिषद् के प्रथम श्लोक के विषय में चर्चा करते हुए, मैत्रेयी की अभिलाषानुसार आत्मतत्व की अमृतमय वाणी तुम्हें पहले बताई जा चुकी है। अब ईशोपनिषद् के अंतिम श्लोक में भगवान पर किस प्रकार निर्भर होने का आह्वान किया गया है — उद्धृत कर रहा हूं —

अग्ने नये सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥ ८ ॥

भावार्थ यह है कि ज्ञानस्वरूप, प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप हमें उत्तम तथा मोक्ष मार्ग पर ले जाइये, अर्थात् चलाइये। हे सर्वव्यापक ! सर्वदा आप सब कुछ जानते हैं, देखते हैं। अतः हमें अन्याय से, पाप से दूर ले जाइये। हम विनम्रता के साथ आपसे बारम्बार प्रार्थना कर रहे हैं कि आप हमें सभी पापों से दूर रखकर मोक्ष मार्ग पर ले जाइये।

वच्ची ! यह प्रार्थना इसलिये करना चाहिये कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध रूपी शत्रु मनुष्य को सदैव ही अपनी ओर तथा स्वार्थपरता की ओर आकर्षित करते रहते हैं। उनसे वचने का एकमात्र उपाय ईश्वर सर्वत्र, सर्वज्ञ है। यह मान्यता लेकर अपने को उनके चरणों में समर्पण कर देना है।

ईशोपनिषद् का सारांश यह है कि ईश् अर्थात् परमेश्वर जगत का स्वामी है, शासक है, व्यापक है, अतः परमेश्वर की सर्वव्यापकता सर्व-स्वामित्व-बोध दृढ़ हो जाय तो मनुष्य से पाप किये भी न हो सकेगा। चोर, डाकू, वदमाश सब प्रकार के पापी अपनी वुराई को छिपाकर पाप करते हैं, क्योंकि किसी को ज्ञात होने पर, सामाजिक, नैतिक, वैधानिक दण्ड का भागी होना पड़ेगा। परन्तु जव परमेश्वर सर्वव्यापक हैं अर्थात् सभी स्थानों में विद्यमान हैं तथा उनकी दृष्टि से कैसे बचा जा सकता है, यदि यह धारणा वनी रहे तो मनुष्य पापवृत्ति से मुक्त रह सकता है।

वस, आज यहीं तक। अगली बार कठोपनिषद् आरंभ करेंगे।

भगवान तुम्हें सुख समृद्धि प्रदान करें !

आशीर्वाद के साथ,
वावा

पत्र संख्या – ७

चि० भुलु !

मंगलानुशासनम्।

भगवान की कृपा से तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक होगा।

बच्ची, तुमने सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि – इन चारों युगों का नाम सुना होगा। सत्ययुग पवित्र युग था, नाम से ही ज्ञातव्य है। सत्ययुग में यज्ञ, दान, धर्म, तपस्या तो लोगों के नित्य नैमित्तिक कार्यों के अंग-स्वरूप थे। यज्ञ करना सब से पुण्य कार्य माना जाता था। यज्ञ का साधारण अर्थ है – परार्थ-कल्याणकारी कार्य करना। उस युग में ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, क्षत्रिय के मध्य यज्ञ की होड़ लगी रहती थी। ऋषि, मुनि, ब्राह्मण करते थे अपनी मुक्ति के लिये तथा क्षत्रिय करते थे –

अपनी प्रतिष्ठा, साम्राज्य व प्रतिपत्ति विस्तार के लिये। यज्ञ विधि तुम्हें ज्ञात होगी। तुम्हारी १५वीं वर्षगांठ के समय तुमसे यज्ञ कराया गया था, वैसे ही यज्ञकुण्ड वृहताकार में बनते थे। उसमें समिध अर्थात् यज्ञकाष्ठ की स्थापना की जाती थी। शुद्ध, पवित्र, निष्कलंक मन लेकर वेद-ध्वनि के साथ यज्ञकर्त्ता द्वारा चदन-काष्ठ में अग्नि प्रज्वलित करके हवन सामग्री सहित घृताहुति अर्पण की जाती थी। सौरभयुक्त यज्ञ सामग्री प्रज्वलित कुण्ड में दग्ध होकर चारों दिशाओं में दूर-दूर आकाश पाताल तक सम्पूर्ण वायुमडण्ल सौरभमय कर देती थी। स्वर्ग से देवतागण पवित्र हवि ग्रहण करने के लिए यज्ञस्थल पर उपस्थित हो जाते थे। देवगणों का प्रधानतानुसार हवि के विभाग का प्रावधान था। कोई-कोई यज्ञ वर्षों तक चलता था। परम भक्ति, श्रद्धा के साथ यज्ञाग्नि में ऋत्विक के सहित यज्ञ-कर्त्ता आहुति प्रदान करते थे। ब्राह्मण आदि उपस्थित लोगों को यज्ञकाल तक अति उपादेय भोजन कराते थे। अन्त में पूर्णाहुति होती थी। यह भी ज्ञात है कि तुम्हारे हवन के समय जैसे उपस्थित जनों ने, मंत्र के साथ हवन कुण्ड में हवन सामग्री सहित आहुति दी थी, वैसे ही अन्त में महा-समारोहपूर्वक उपस्थित ऋषि, मुनि, ब्राह्मणों के साथ यज्ञकर्ता समस्वर में वेद-मंत्रोच्चारण करते हुए अंतिम अर्थात् पूर्णाहुति प्रदान करते थे।

इसके पश्चात् ऋत्विकगण तथा ब्राह्मणों को दक्षिणा दी जाती थी। इस कार्य में सहायता करने वाले ऋषि, मुनि, ब्राह्मणों को ऋत्विक कहा जाता है।

बस, आज यहीं तक।

भगवान तुम्हें शक्ति दे!

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्र संख्या – ८

चि० भुलु!

मंगलानुशासनम्।

आशा है प्रभु की अनुकम्पा से तुम कुशल पूर्वक होगी।

उस दिन कठोपनिषद् प्रारंभ करते हुए यज्ञ विधि के विषय में संकेत किया था। क्योंकि कठोपनिषद् का सूत्रपात यज्ञ की दक्षिणा प्रदान करने के प्रसंग से प्रारंभ हुआ था।

आजकल यज्ञ प्रथा प्रचलित नहीं है। सत्य, त्रेता, द्वापर युग में यज्ञ प्रथा प्रचलित थी। सत्ययुग में ऋषि वाजश्रवा के पुत्र उद्दालक मुनि ने अपनी मुक्ति के लिये "विश्वजित" नामक एक यज्ञ किया था। इस यज्ञ में अपना सारा धन, सम्पदा, गौ आदि पशुधन, सर्वस्व दान किया जाता है। विशेषतः गौदान को श्रेष्ठदान माना गया है। अतः उद्दालक मुनि भी पूर्णाहुति के समय बहुत सी धन-सम्पत्ति के साथ जीर्ण-शीर्ण गायों को भी ऋत्विक को दे रहे थे। उन उद्दालक मुनि के एक छोटा-सा पुत्र था। जिसकी आयु ९-१० वर्ष के लगभग थी। उनके इस पुत्र का नाम "नचिकेता" था। वालक नचिकेता उस यज्ञ के विशाल समारोह में अपने पिता के पास बैठकर वहां हो रहे सभी क्रिया-कलापों को बालकोचित उत्सुकता के साथ देख रहा था।

वच्ची! यज्ञ में वेद-मंत्र के साथ दान-दक्षिणा, भोजनादि चलते रहते थे। तुम्हारे विद्यापीठ के एक दिन के वार्षिक-उत्सव के लिये अनेक दिनों पूर्व तैयारी आरंभ हो जाती है एवं वह उत्सव का दिन विभिन्न कार्य-कलापों के साथ सम्पन्न होता है। और यह यज्ञ तो अनेक दिनों तक चलता है। विशेषरूप से पूर्णाहुति के दिवस विराट समारोह होता है।

इससे पूर्व यह उल्लेख किया गया है कि बहुत-सी धन-सम्पत्ति के साथ जीर्ण-शीर्ण गायों को उद्दालक मुनि दान कर रहे थे। उनके पुत्र नचिकेता को यह देखकर बड़ा खेद हुआ। वह सोचने लगा कि पिताजी यह क्या कर रहे हैं? ऐसी गायों को क्यों दान कर रहे हैं — जिनमें से बहुत-सी जीर्ण-शीर्ण तथा वृद्ध हैं, इनमें से वहुत-सी न तो घास, चारा चबा सकेंगी, न गोवंश की वृद्धि कर सकेंगी तथा न बहुत समय तक जीवित रहेंगी। घर पर अन्य अच्छी-अच्छी गायें भी हैं जो कि अपने लिये रख ली गई हैं। वालक नचिकेता को यह देखकर, बहुत आश्चर्य हो रहा है कि प्रजनन शक्ति में असमर्थ गायें दूध कहाँ से देंगी। ऐसी दुग्धरहित गायें ऋत्विक लोग ले जाकर क्या करेंगे?

भुलु बेटा ! इतने छोटे बच्चे के मन में कितना वड़ा विचार आया, देखा तुमने ! वह बालक सोचने लगा कि यह तो वड़ा अन्याय है। पिताजी स्वार्थवश होकर अच्छी-अच्छी गायें रखकर, सब प्रकार से निष्कर्मा गायों को दान कर रहे हैं। अथच् यह यज्ञ "विश्वजित" यज्ञ है, जिसमें सर्वस्व दान का विधान है। पिताजी मोहवश होकर वहुत पाप कर रहे हैं। मैं उनका एकमात्र पुत्र हूं। मेरे लिये वे ऐसा कर रहे होंगे। अतः मेरा कर्त्तव्य है, इस मोहरूप-पाप से पिता को मुक्त कराना।

वस, आज यहीं तक।

भगवान तुम्हारा कल्याण करें !

आशीर्वाद के साथ,
वावा

पत्र संख्या – ९

चि० भुलु !

मंगलानुशासनम्।

आशा है श्री भगवान की कृपा से तुम स्वस्थ एवं प्रसन्न होगी।

उस दिन के पत्र में नचिकेता के मन में आये उच्चतर विचार के विषय में लिखा था। देखो बेटा ! मोह मनुष्य को कितना नीचे गिरा देता है। उद्दालक तो ऋषि थे। ऋषि कौन होता है, इसका उल्लेख मैंने तीसरे पत्र में किया था। महाज्ञानी होते हुए भी वे मोह से मुक्त नहीं हो सके। बेटा ! यह है प्रकृति, भगवान की लीला। तुम पूछ सकती हो कि जव सभी कुछ भगवान की लीला है एवं भगवान ही सब कुछ कराते हैं तो मनुष्य को क्यों दोष लगता है ? हां बेटा ! यह कथन अपने पाप को छिपाने के लिये ही कहा जाता है। भगवान सव कुछ करने वाले हैं, ठीक ही बात है। किन्तु उन्होंने साथ-साथ यह भी कह दिया है कि यह अन्याय, वह न्याय। यह करने से यह दण्ड भोगना पड़ता है और वह करने से वह लाभ मिलता है। अतः वच्ची ! जव उन्होंने परिणाम दर्शाया है, तब लोग अन्याय की ओर क्यों जाते हैं ? जान-बूझ कर किये कार्य का फल भोगना ही पड़ता

है । एक छोटा-सा दृष्टान्त है – जैसा तुम्हें ज्ञात है कि अग्नि में हाथ डालने पर जल जायगा । तव तुम जान-बूझ कर अग्नि में हाथ डालोगी ? कभी नहीं । कोई वलात् डालने का प्रयत्न करेगा तो तुम्हारा यथासाध्य प्रयत्न होगा कि उस हाथ को अग्नि से वचाया जा सके । ठीक है न, वच्ची ? तो अव देखो, सत्ययुग में भी ऐसी घटना घटती थी । मोह तथा स्वार्थ में लोग ग्रस्त रहते ही थे ।

अव पुनः नचिकेता के पास चलो । उस दिन के उत्पन्न विचार को नचिकेता ने किस प्रकार क्रियान्वित किया है, देखें ।

नचिकेता सोचते सोचते इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि यह तो "विश्वजित" यज्ञ है । इस यज्ञ में सर्वस्व दान करना होता है । पिता के सर्वस्व में, मैं भी तो आता हूं । पुत्र तो सवसे वड़ा धन होता है, अतः मैं भी दान में क्यों न सम्मिलित होऊं ? विशेषतः पिताजी मोहवश अच्छी गायों को रख रहे हैं । कारण तो मैं ही हुआ । अतः मेरा कर्त्तव्य है कि पिताजी को इस मोह जाल से मुक्त कराना । यह सव सोच-विचारकर वालक नचिकेता अपने स्थान से उठकर पिता के पास पहुँचा एवं विनम्रता से कहा – "पितरं तत कस्मै मां दास्यसीति ?" अर्थात् "पिताजी आप मुझे किसको दान देंगे ?" ऋषि ने सुना किन्तु उत्तर नहीं दिया । वालक ने द्वितीय वार पूछा, तृतीय वार पूछा, इस प्रकार वारम्वार पूछने पर मुनि को क्रोध आ गया । उनके मन में आया कि-मैं यज्ञ कर रहा हूं, शेष आहुति दे रहा हूं । दान आदि कार्य चल रहा है और यह वच्चा आकर व्यर्थ वात जो उसे शोभा नहीं देती, उसे ही वार-वार कहकर मेरे कार्य में विघ्न डाल रहा है, अतः मुनि ने वालक के मन में भय उत्पन्न करने की धारणा से क्रोध में कहा – "मृत्यवे त्वा ददामीति"-अर्थात् "मैं तुझे मृत्यु को दूंगा ।"

क्रोध में पिता के मुख से अप्रत्याशितरूप में जो वात निकली उसने वालक नचिकेता को और भी गहरे सोच में डाल दिया है । पिता के पास से उठकर दूर जाकर वहुत सतर्कता से सोचने लगा कि मैंने ऐसा अधम कार्य नहीं किया, ऐसा कोई अधम व्यवहार भी नहीं किया, जिसके कारण पिताजी मुझे यम को सौंप सकते हैं । मैं तो छोटा हूं, मेरे द्वारा यमराज का क्या कार्य सम्पन्न होगा ? यह भी

हो सकता है कि पिताजी ने क्रोध के आवेश में आकर, यम को देने के लिये कह दिया, जो कुछ भी हो, वह तो उनका मन ही जाने, किन्तु एक सत्पुत्र होने के कारण पितृ-आज्ञा का पालन करना मेरा केवल कर्त्तव्य ही नहीं, वरन् धर्म है । यह सोचकर नन्हें बालक नचिकेता ने यमराज के पास जाने का दृढ़ संकल्प कर लिया । उसने पिता के समीप उपस्थित होकर नतमस्तक होते हुए पितृ-पद वंदना की, एवं यमराज के पास जाने के लिये करबद्ध होकर आज्ञा मांगी ।

बस, आज यहीं तक ।

प्रभु तुम्हें अन्तर्दृष्टि प्रदान करें !

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्र संख्या – १०

चि० भुलु !

मंगलानुशासनम् ।

प्रभु के अनुग्रह से तुम्हारी पढ़ाई ठीक चल रही होगी ।

उस दिन नचिकेता को हम जिस स्थिति में छोड़कर आये थे, चलो आज देखें कि उसको पितृ-आज्ञा प्राप्त हुई या नहीं ?

बिटिया ! पुत्र, कन्या को माता-पिता कभी भी यमलोक भेजने की बात तो दूर की बात है, सोचने या स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकते ! हां, कभी-कभी कृत्रिम क्रोध से ऐसी बात डराने-धमकाने के लिये अनायास मुंह से निकल जाती है, किन्तु वह आंतरिक नहीं, भय दिखाने के लिये ही होती है । अवश्य, पश्चात्ताप बाद में होता है । तुम भी तो मेरी बहुत डांट-फटकार खाती हो न बच्ची ? संतान के लिए माता-पिता क्या नहीं कर सकते । अतः नन्हें से बालक को इस स्थिति में देखकर उद्दालक ऋषि का हृदय विदीर्ण हो रहा है । अनुताप की अनल में दग्ध हो रहा है । पितृ-हृदय मन ही मन यह कहकर स्वयं को धिक्कार रहा है कि मैंने यह क्या किया ? ऐसी निष्ठुर बात मुख से क्यों निकली । मैं पिता होकर पुत्र को यमलोक जाने की अनुमति कैसे दे सकता हूं ? मैं अयोग्य पिता हूं, आदि बातें सोचते-सोचते मुनि शोकमग्न हो गये ।

पिता को शोकमग्न देखकर बालक नचिकेता ने कहा-"पिताजी, आप क्यों सोच में पड़ गये, आपके पिता-पितामह आदि के आचरणों की ओर दृष्टिपात कीजिये। साधु-महात्मा जो आचरण करते हैं उनका आप भी अनुसरण कीजिये। असाधु लोग ही असत्य को अपनाने की चेष्टा करते हैं। मिथ्या का कोई मूल्य ही नहीं। मनुष्य अमर नहीं रहता। अनाज के पौधे की भांति जीर्ण-शीर्ण होकर नष्ट हो जाता है तथा मिट्टी का अंश बन जाता है। इसी प्रकार अनित्य जीवन तथा असत्य आचरण से क्या लाभ हो सकता है? सत्य, न्यायपरायणता, सुकृति, अमर अक्षय होकर रहती है। इससे ही मनुष्य अमर हो जाता है। अतः पिताजी, आप शोक त्याग दीजिये। अपने वचन सिद्ध करने के लिये मुझे यमलोक जाने की अनुमति दीजिये। आपका यज्ञ सफल हो, यह सोचकर मैं यमराज के निकट जाने के लिये आपके आशीर्वाद प्राप्त करने के अभिप्राय से प्रस्तुत हुआ हूं। आप आज्ञा दीजिये। शुभ कार्य में विलम्ब होना अच्छा नहीं है।" यह कहते हुए बालक नचिकेता ने पितृ-चरण पकड़ लिये।

बेटा! यह परिस्थिति एक बार अपने कल्पना-नेत्रों से अवलोकन करो। क्या ही निदारुण हृदय-विदारक दृश्य है। मृत-संतान को माता-पिता की गोद से छुड़ाना कठिन होता है और इस नन्हें जीवित बालक को पिता कैसे यम के पास भेज दे? तुम समझ सकती हो कि पिता के हृदय में कितना दुःख हो रहा है, किन्तु बालक की सत्यपरायणता, निष्ठा, निर्भीकता देखकर, ऋषि आज्ञा देने के लिये बाध्य हो गये। सत्य-संकल्प बालक ने पितृ चरण-रज मस्तक पर धारण करते हुए पिता को असत्य से मुक्त करने के लिये हर्षित हृदय से यमलोक की ओर प्रस्थान किया।

बस, आज यहीं तक।

ईश्वर तुम्हें आत्मानुसंधान के लिये प्रेरित करें!

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्रसंख्या –११

चि० भुलु !

मंगलानुशासनम् ।

आशा है परम मंगलमय प्रभु की कृपा से तुम प्रसन्न होगी ।

तुम उस दिन का पत्र पढ़कर आश्चर्य में पड़ गई होगी । यमराज के निकट छोटा बालक कैसे पहुँच सकता है ? यमराज कहां रहते होंगे ? वहां तो शरीर लेकर कोई जा नहीं सकता, मृत्यु के पश्चात् ही जाना होता है । बालक नचिकेता का यमराज के यहां सशरीर पहुँचना एक अलौकिक घटना है । हां, बेटा ! यह धारणा हम लोगों की है ही । यम नाम से एक विभीषिकामय भीतिकारी चित्र को हम लोगों के मन में जन्म से ही अंकित किया जाता है, किन्तु बबलु ! जितने लोग हैं उतने ही आवास-स्थल हैं; जैसे विष्णु लोक में विष्णु भगवान, शिवलोक में भगवान शिव, ब्रह्मलोक में ब्रह्माजी, इन्द्रलोक में देवराज इन्द्र रहते हैं, वैसे ही यमलोक यमराज का आवास-स्थल है । यमराज को धर्मराज भी कहते हैं । अब सोच लो कि जो धर्मराज होता है, वह कभी भयंकर हो सकता है ? नहीं न ? जैसे युधिष्ठिर, महाभारत में उनको भी धर्मराज कहा गया है । क्योंकि उनका जन्म भी यमराज से संबंधित है । वह कहानी तुम्हें बाद में बताऊँगा । बेटा ! जिस युग की यह कहानी है, वह था – सत्ययुग । सत्ययुग नाम से ही ज्ञात होता है कि वह युग कैसा था ? अर्थात् सब कुछ न्याय तथा सत्य पर प्रतिष्ठित था । तुम्हारे ऐच्छिक विषयों में एक विषय समाज-विज्ञान भी है न ? उसमें शासनपद्धति की रूपरेखा है । समाज की शृंखला के लिये शासनपद्धति की आवश्यकता रहती है । तुम्हें ज्ञात ही होगा कि न्यायपालिका, कार्यपालिका आदि का कैसे गठन हुआ, एवं उनके क्या कार्य हैं ? और भी ज्ञात हुआ होगा – राजतंत्र व गणतंत्र शासनपद्धति का चित्र । अतः सत्ययुग में भी शासन-पद्धति प्रचलित थी । क्योंकि समाज के लिये यह तो अपरिहार्य है । इसलिये हम इस विषय को अलौकिकता के भ्रमजाल में न डालकर, लौकिक पद्धति के सहारे से विचार-विनिमय करें । आगे देखोगी कि यम कितने महान थे ? इन्द्र के विषय में बताया है कि वे इन्द्र थे – देवलोक के राजा । इसलिये इन्द्र

को देवराज भी कहा जाता है। यम हैं – मृत्युलोक के अधिकारी। ये दोनों पद परम्परा से ही चलते थे किन्तु पुराणों में यह भी देखा गया है कि आवश्यकतानुसार चुनाव व नियुक्ति भी होती थी। दोनों में से लोभनीय पद तो इन्द्र-पद है। क्योंकि संसार में देवताओं को ही श्रेष्ठ माना जाता है। संसार का श्रेष्ठ वैभव देवलोक में ही उपलब्ध था – जहाँ विश्राम, भोग-विलास, ऐश्वर्य आदि वैभव प्राप्त होते थे। इन्द्र-पद के लिये संघर्ष भी चलता था। इसके अतिरिक्त बिना संघर्ष के भी कोई-कोई विशेष साधना द्वारा इन्द्र-पद को प्राप्त कर सकता था। अतः इन्द्र को अपना आसन हस्तान्तरित होने के भय से सर्वदा सशंकित रहना पड़ता था। हां, बेटा ! एक बात ध्यान में रखना, जहां पद के लिये मोह है, वहां अन्याय, छल, कपट तथा भ्रष्टाचार प्रवल हो जाते हैं। तुमने यूरोप के इतिहास में पढ़ा होगा कि पद तथा राज्यगद्दी के लिये कितने संघर्ष हुए ? मैं तो कहूंगा कि यूरोप का इतिहास तो संघर्ष का इतिहास ही है। इसी प्रकार लोभनीय इन्द्र-पद के लिये इन्द्र को भी सशंकित रहना पड़ता था। यह पहले भी वताया है न। देवराज इन्द्र भी अपनी गद्दी की रक्षा के लिये छल, बल, कौशल आदि अन्याय का कभी-कभी सहारा लेते थे। पुराण की बात तो तुम्हें याद ही है कि असुरों द्वारा गद्दीच्युत होकर इन्द्र स्वर्ग से भागकर मर्त्यलोक में आकर, मनुष्यों के अन्दर छिपते हुए इस अवसर की प्रतीक्षा में रहते थे कि पुनः कैसे गद्दी प्राप्त हो सके। इसके अतिरिक्त यदि कोई मुनि, ऋषि, राजा या साधारण जन विशेष या कठोर साधना में रत रहते थे, तो इन्द्र के मन में यह भय उत्पन्न हो जाता था कि वह साधना इन्द्र-पद-प्राप्ति के लिये तो नहीं की जा रही है ? इसलिये साधक की साधना चाहे उसके आत्म-कल्याण के लिये ही क्यों न हो, इन्द्र द्वारा वह साधना छल व चातुर्य से भंग कर दी जाती थी, ऐसा था इन्द्र-पद का लोभनीय मोह।

किन्तु बेटा ! यम-पद के लिये कोई लालायित नहीं होता था, क्योंकि एक तो कार्य था बड़ा कठोर, दूसरे सत्य तथा न्याय पर प्रतिष्ठित, तो भी यम को कार्यवश दीर्घावधि के लिये अन्यत्र जाना

पड़ता तो उसके स्थान पर उतने दिनों के लिये अन्य किसी की नियुक्ति होती थी। पुराण में ऐसा वर्णन मिलता है।

बस, आज यहीं तक।

प्रभु तुम्हें अपार शक्ति प्रदान करें !

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्र संख्या – १२

चि० भुलु !

मंगलानुशासनम्।

आशा है श्री भगवान की कृपा से तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक होगा।

उस दिन यम-पद के विषय में लिखते-लिखते रुक गया था। जैसे न्यायालय के न्यायाधीशों का कार्य है–अभियुक्तों के न्याय-अन्याय पर विचार करके अभियोग से मुक्ति, कारागार या मृत्यु दण्ड देना। वर्तमान भारत पृथ्वी का बृहद्तम गणतांत्रिक देश है। हमारे भारत में १६ राज्य हैं। न्यायालय आदि बहुत हैं, जिनमें विचार आदि के पश्चात् दंडित व्यक्ति को कारागृह में भेज दिया जाता है। कानून के अनुसार राजा को भी अति जघन्य अपराध के लिये दंडित किया जाता था। किसी-किसी देश में गोली भी मार दी जाती थी। किसी देश में मृत्यु-दण्ड की प्रथा बंद हो गई तो कहीं बन्द होने जा रही है। हमारे देश में भी इस प्रथा को समाप्त करने के लिये संसद में विचार-विनिमय कभी-कभी होता ही रहता है।

सुकरात को विषपान कराकर दिये गये मृत्यु-दण्ड के विषय में तुम्हें ज्ञात ही होगा। यीशु की किस प्रकार मृत्यु हुई है–यह भी तुम्हें ज्ञात ही है। सृष्टि के आदिकाल से आज तक समाज की प्रथाओं के अनुसार दण्ड की विभिन्न परम्पराओं का विधान नियमित चला आ रहा है। वर्तमान समय में पृथ्वी पर अनेक राष्ट्र हैं।

अब चलो ! सत्ययुग में प्रवेश करें–उस युग में सारी पृथ्वी एक ही राष्ट्र थी। एक ही शासक के अधीन शासन-कार्य तथा दण्ड का कार्य चलता था। अब समझलो विश्व में यदि एक ही व्यक्ति

दण्डनायक हो – तो कितने कठोरतम तथा क्रूरतम दण्ड देने की अनुमति देनी पड़ती थी। कानून तथा अनुशासन के अभाव में राष्ट्र में विशृंखलता व अराजकता छा जाती है। अतः दण्डनायक को कानून के अधीन रहना पड़ता है। भले ही उसका मन कोमलता व स्नेह से भरा हुआ क्यों न हो, लोग उससे क्यों नहीं डरेंगे? सहस्त्रों व्यक्तियों को मृत्युदण्ड देना पड़ता है। कारागृह में डालकर सजा देनी पड़ती है, लोग उनके मन के विषय में नहीं सोचते, कार्य की आलोचना करते हैं। क्रूर समझना स्वाभाविक ही है, क्योंकि कारागृह में छोटी-बड़ी सजा तथा यंत्रणा उन्हीं के आदेशानुसार ही वहां के कर्मचारियों द्वारा दी जाती है। मानो एक साथ दस-बीस-पचास अपराधियों को विभिन्न प्रकार की सजा चल रही हो तो कितना करुणामय दृश्य उपस्थित हो जाता है। चारों ओर रुदन, आर्त्तनाद, आदि असह्य दृश्य होते रहते हैं। यमराज तथा कर्मचारियों को (जिन्हें यमदूत कहा जाता है) अविचलित होकर देखना, सुनना तथा सहन करना पड़ता है। एक साथ कई जनों को फांसी या यंत्रणा द्वारा दंडित करना कठोरता नहीं कहलायेगी? ऐसा ही था यम का कार्य। किन्तु बेटा! वह भी मनुष्य था। स्त्री, पुत्र, परिवार, परिजन लेकर संसार-धर्म-निर्वाह करना पड़ता था। तो बच्ची! उसके पास मनुष्य क्यों नहीं जा सकते? पहले ही दर्शाया है कि लोग नाम से ही डरते थे, सामने जाने की बात ही नहीं सोच सकते। क्योंकि यमपुरी से कोई व्यक्ति लौटकर नहीं आता था, कारण था – या तो मृत्यु-दण्ड मिलता था या आजीवन कारागार-दण्ड भोगना। अतः ऐसे व्यक्ति के पास जान-बूझकर कोई नहीं जाता, किन्तु हमारे प्रसंग का नायक नन्हा बालक नचिकेता उस दिन यम-भवन की ओर चल दिया, लिखा है न?

बस, आज यहीं तक। अगली बार हम देखेंगे कि वह गया या डरकर अन्यत्र चला गया।

भगवान तुम्हारा कल्याण करें!

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्र संख्या – १३

चि० भुलु !

मंगलानुशासनम् ।

आशा है प्रभु की अनुकम्पा से तुम कुशलपूर्वक होगी ।

उस दिन हम लोगों ने देखा कि नचिकेता ने यमपुरी की ओर प्रस्थान किया। निर्मल, पवित्र-हृदय, निर्भीक तथा आत्मविश्वासी बालक धीरे-धीरे यमलोक जाकर यम-भवन में उपस्थित हुआ। किन्तु यमराज उस समय भवन में नहीं थे। वे कार्यवश अन्यत्र दूर प्रवास में गये हुए थे। उनकी भार्या एवं मंत्रियों ने बालक का यथाविधि आदर सत्कार करके खाने-पीने के लिये आह्वान किया, किन्तु बालक ने न कुछ खाया, न पान किया। विना यम से भेंट किये वह कुछ ग्रहण नहीं करेगा – बालक का ऐसा उत्तर था, क्योंकि उनके पिताजी ने तो उसे यम को समर्पित कर दिया था। अब वह यम के अधीन है। विना यम की आज्ञा के वह कैसे कुछ खा-पी सकता है ? ऐसी अवस्था में दिन व्यतीत होकर रात्रि हो रही है एवं रात्रि समाप्त होकर दिन पूरा होता जा रहा है। बालक जल भी ग्रहण नहीं कर रहा है।

बालक नचिकेता के दृढ़ संकल्प को देखकर यम परिवार के सब लोग संत्रस्त हो गये। अतिथि, विशेषतः ब्राह्मण बालक, उपवासी होकर द्वार पर पड़ा हुआ है। अतिथि उपवासी रहने से गृहस्थ का अमंगल होता है। क्या पता, यम का कुछ अशुभ होने वाला है ? यह सब सोचते हुए वे लोग भी संत्रस्त मन से दिन व्यतीत करने लगे। अब देखो, यम को भी भय है। इससे क्या ज्ञात होता है ? यम भयानक था कि एक साधारण व्यक्ति की भांति था ? अतिथि की सेवा प्राचीन काल से बड़ी महत्वपूर्ण थी। आजकल पाश्चात्य-शिक्षा के प्रभाव में अतिथि-सत्कार तो होता ही नहीं, वरन् अतिथि को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है। अथच हमारा महान देश भारत आदिकाल से ही अतिथि-परायण रहा है। एतद् संबंधित बहुत से उदाहरण पुराणों में वर्णित हैं। अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव के कारण पुराणों पर तो लोग विश्वास करते नहीं, अपितु अलीक कहकर व्यंग्य करते हैं। किन्तु बेटा ! सत्यता है या नहीं, यह विचार छोड़ भी दो तो

अनुकरणीय आदर्श से भरपूर है। महाभारत के दानवीर कर्ण की अतिथिसेवा की कहानियां अति मर्मस्पर्शी एवं आदर्शनीय हैं। आज तुमको उसमें से एक लिख रहा हूं।

उस समय कर्ण की भांति दाता कोई भी नहीं था। ऐसा व्यक्ति भगवद्भक्त भी होता है। तुम्हें तो ज्ञात है कि श्रीकृष्ण भगवान नारायण के अवतार थे। दानवीर कर्ण भी श्रीकृष्ण का बड़ा भक्त था। भगवान भक्त को महत्व स्वयं देते ही हैं, साथ ही लोक-समक्ष में भी परीक्षा द्वारा प्रचार करते हैं। कर्ण की प्रतिष्ठा लोगों के सामने प्रदर्शित करने के लिए श्रीकृष्ण ने परीक्षा लेने की सोची।

एक दिन श्रीकृष्ण, जिस दिन द्वादशी थी, एक अति वृद्ध ब्राह्मण का वेश धारण करके लाठी ठोंकते हुए, प्रातःकाल कर्ण के द्वार पर उपस्थित हुए। कर्ण-दम्पति ने पूर्व दिन एकादशी की थी, अर्थात् रात-दिन उपवास में रहकर भगवान के भजन में व्यतीत किया था। प्रातः उठकर स्नानादि के पश्चात् घर में प्रवेश करते ही द्वार पर देखते हैं कि एक वृद्ध ब्राह्मण बैठकर हांफ रहा है। कर्ण ने दौड़कर ब्राह्मण की पग-धूलि मस्तक पर धारण करते हुए करवद्ध नतजानु होकर पूछा :–

"ब्राह्मण देवता! आपका आगमन मेरे लिये बहुत ही सौभाग्य-सूचक है। बताइये, यह दीन सेवक आपकी क्या सेवा करे?"

ब्राह्मण ने जैसे वह बहुत दिन से निराहार रहा हो, ढोंग रचकर कहा – "मैं तो अतिवृद्ध हूँ, तदुपरांत कल निर्जला एकादशी की, आज पारण है, इसलिये तुम्हारे पास पारण हेतु आया हूँ।"

कर्ण ने अतीव हर्ष के साथ कहा – "देवता! मेरे जन्म-जन्म का पुण्य-फल है कि आप आज इस उद्देश्य से पधारे हैं। आज्ञा दीजिये, आप किस वस्तु से पारण करेंगे? मैं सामर्थ्यानुसार आपकी आज्ञा का पालन करूंगा।"

ब्राह्मण ने कहा – "मेरी अभिलाषानुसार तुम पारण करवा सकोगे? इसमें मुझे शंका है, क्योंकि वह कठिन है।"

कर्ण ने कहा – ब्राह्मण देवता, मैं वचन देता हूं, आपकी अभिलाषा अवश्य पूर्ण होगी। आप अविलम्ब बताइये। आपकी अभिलाषा कौन-सी है?"

ब्राह्मण ने कहा—"मेरी शिशु-मांस में अधिक रुचि है, अतः तुम शिशु-मांस से पारण करा सको तो अच्छा है, नहीं तो अन्यत्र जाना पड़ेगा।"

कर्ण यह सुनकर आश्चर्य में पड़ गया एवं सोचने लगा कि ऐसे पारण की बात तो कभी नहीं सुनी गई। शिशु कहां मिलेगा? कौन अपना शिशु देगा।"

किन्तु कर्ण प्रतिज्ञावद्ध है, साधारणतया कर्ण अपने द्वार से रिक्त हस्त कभी किसी को नहीं जाने देते। अतः उन्होंने कहा-"ब्राह्मण देवता! आप किंचित समय यहां विश्राम कीजिये। मैं पत्नी से पूछकर अभी आरहा हूँ।"

यह कहकर कर्ण ने अन्दर जाकर रानी पद्मावती को सारी वात सुनाई एवं कहा-"ज्ञात नहीं, कौन देवता छल करके परीक्षार्थ आये हैं, जो भी हो, अब शिशु कहां मिलेगा? कौन देगा हमें वध करने के लिये? और दूसरे के शिशु का वध, हम कैसे कर सकेंगे? ऐसा विचार-विनिमय पति-पत्नी दोनों में चल रहा है। इससे विलम्ब भी हो रहा है। इस अवसर पर ब्राह्मण ने द्वार से आवाज लगाकर कहा—

"कर्ण! बहुत देर हो रही है, मुझसे अब रहा नहीं जा रहा है, क्षुधा से प्राण निकलने को है। तुमसे यदि पारण नहीं हो सके तो मुझे शीघ्र बताओ। मैं अन्यत्र कहीं प्रबंध कर लूंगा। नहीं तो तुम्हें ब्रह्म-हत्या का पाप लगेगा।"

ब्राह्मण की आवाज भरी बात सुनते ही कर्ण भागकर ब्राह्मण के पास आये एवं कहने लगे:—

"ब्राह्मण देवता! कर्ण के द्वार से आज तक किसी को विमुख नहीं होना पड़ा। आप कृपया तव तक प्रतीक्षा कीजिये, जब तक कि शिशु-वध के पश्चात् मांस-रंधन न हो जाय। मैं शिशु को अभी ला रहा हूं।"

यह कहकर कर्ण अपने आंगन की ओर भागा, वहां कर्ण का सप्तमवर्षीय शिशु अन्यान्य बालकों के साथ खेल रहा था। कर्ण अपने एकमात्र पुत्र को खेल से बुला लाये एवं ब्राह्मण की चरण-धूलि लेकर, शिशु के मस्तक तथा सारे अंग में लेपन करने लगे।

अति उपादेय तथा रसाल-खाद्य पदार्थ को देखकर जैसे रसना से रस निकलता है वैसे ही प्रसन्नता की लहर दिखाकर ब्राह्मण ने कहा:—

"वाह ! वाह !! यह तो सुन्दर शिशु है, कितना हृष्टपुष्ट है ? इसका मांस तो बहुत स्वादिष्ट होगा। अरे भाई कर्ण ! तुम इस शिशु को कहां से पकड़ लाये ? यह कौन-से माता-पिता का दुलारा है ?"

कर्ण ने कहा-"ब्राह्मण देवता ! यह शिशु अधम कर्ण की संतान है। आपकी सेवा के लिये इसे ले जा रहा हूँ।"

तब ब्राह्मण ने विमर्ष जैसा होकर कहा :—

"नहीं भाई कर्ण। तुम इसका वध नहीं कर सकोगे। शोकग्रस्त होकर भोजन कराओगे तो मेरी तृप्ति नहीं होगी। मैं तो अन्यत्र जा रहा हूं" कहकर वृद्ध ब्राह्मण, अपनी लाठी उठाकर चलने लगे।

कर्ण ने कहा-"प्रभो ! नहीं ! आप जा नहीं सकते। मैं शोकग्रस्त नहीं होऊंगा। आपके सामने ही बालक का वध करूंगा।"

तब ब्राह्मण ने कहा—"देखो, तुम और पद्मावती आरी (करोत) से जिस प्रकार लकड़ी चीरते हैं, वैसे ही दोनों बैठकर हंसते-हंसते शिशु का वध करना पड़ेगा। एवं अतिहर्ष के साथ व्यंजन बनाना पड़ेगा और मेरे साथ बैठकर दोनों को उस व्यंजन से भोजन करना पड़ेगा। यह शर्त तुम्हें स्वीकार हो तो में पारण करूंगा, नहीं तो अन्य मार्ग तो है ही।"

कर्ण ने कहा—"ब्राह्मण देवता ! तथास्तु ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। आप बैठकर देखिये या स्नानादि से निवृत्त होकर आइये। हम दोनों तब तक आपके आदेश का पालन करते रहेंगे।"

ब्राह्मण ने कहा—"ठीक है, तुम दोनों शिशु-वध एवं व्यंजन तैयार कर लो। मैं तब तक स्नान आन्हिक समापन करके आरहा हूँ।"

कर्ण व पद्मावती दोनों ने बालक को स्नान कराकर अति हर्ष के साथ धीरे-धीरे करोत से वध किया एवं निष्ठापूर्वक शिशु-मांस से व्यंजन तैयार किये। इस अवसर पर ब्राह्मण भी स्नान आन्हिक से निवृत्त होकर आ गये। कर्ण ने कहा-" ब्राह्मण देवता ! चलिये पारणार्थ सब वस्तुएं तैयार हैं।"

ब्राह्मण ने भोजनालय में जाकर देखा कि सम्पूर्ण मांस तीन भागों में वंटा हुआ है। तब उन्होंने कहा – "तीन भाग के स्थान पर चार भागों में बांटो।" पति-पत्नी दोनों आश्चर्य में होकर जिज्ञासु दृष्टि से ब्राह्मण की ओर देखने लगे। ब्राह्मण ने कहा – "जाओ ! आंगन से बालक को बुला लाओ।" कर्ण ने कहा – "देवता ! आप यह क्या कह रहे हैं ? आपके समक्ष ही तो बालक का वध किया। अब वह हमें कहां मिलेगा।" ब्राह्मण ने कहा – "हां, भाई ! मुझे सब ज्ञात है, तुम मेरी बात तो मानो। बाहर जाकर देखो कि बालक खेल रहा है।"

कर्ण अतीव शंका के साथ बाहर गया एवं देखा, यह क्या आश्चर्य ? बालक तो सचमुच खेल रहा है। यह क्या माया है ? कर्ण अतीव हर्ष के साथ बालक को लेकर ब्राह्मण के पद-युगल में मस्तक रखकर कहने लगे-"भगवन् ! आप क्यों हमें छल रहे हैं ? आप कौन देवता हैं ? प्रकट होकर दर्शन दीजिये।" यह कहते ही ब्राह्मण के स्थान पर भगवान नारायण का आविर्भाव हो गया।

तो देखो, बेटा ! ऐसी अतिथि-पूजा पूर्वकाल में, हमारे देश में होती थी । इस प्रकार की कहानियां हमारे पुराणों में अनेक हैं। अवश्य, अतिथि-सेवा अब भी है, पूर्ण लुप्त नहीं हुई है। किन्तु ब्राह्मण पर आजकल इतनी श्रद्धा भक्ति नहीं दिखाई देती है। क्योंकि ब्राह्मणों ने भी अपना ब्राह्मणत्व खो दिया है। जो ब्रह्म को जानता है वही ब्राह्मण है। ब्रह्म के विषय में पहले बताया जा चुका है और विस्तार से नचिकेता-यमराज-संवाद में जान पाओगी।

वैदिक समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण-भेद थे – वे भी गुण और कर्मानुसार। इस विषय में गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है :–

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धयचकर्तारमव्ययम्"

ब्राह्मण का सर्वश्रेष्ठ स्थान था – समाज में। ब्राह्मण का कार्य था – ज्ञान-दान करना। निःस्वार्थ, निरहंकार रहकर दूसरों के कल्याण के लिये सर्वस्व विसर्जित करना था – ब्राह्मण का धर्म। ब्रह्मतेज था – ब्राह्मण में। केवल ब्राह्मण-परिवार में जन्म लेने से ही

ब्राह्मण नहीं होता – गुण द्वारा ही ब्राह्मण बनता था। जैसे क्षत्रिय राजा विश्वामित्र ऋषि वशिष्ठ के ब्रह्मतेज को देखकर, ब्रह्मतेज की प्राप्ति के लिये बहुत-सा साधन करने के पश्चात् ब्रह्मर्षि बने। वह कहानी अति रोचक है। अगली वार इस विषय में लिखूंगा।

बस, आज यहीं तक।

प्रभु तुम्हें सद्प्रेरणा से उद्बुद्ध करें !

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्र संख्या – १४

चि० भुलु !

मंगलानुशासनम्,

आशा है श्री भगवान की कृपा से तुम स्वस्थ एवं प्रसन्न होगी।

पिछली बार तुम्हें ऋषि विश्वामित्र के विषय में लिखने के लिये संकेत किया था। एक दिन राजा विश्वामित्र सैन्य-सामंत सहित वन में शिकार खेलने गये। तुम्हें पहले बताया था कि ऋषि, मुनि गहन अरण्य में रहते थे। शिकार करते-करते सभी लोग मध्यान्ह समय महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में आकर उपस्थित हुए। अतिथि-सेवा करना तो सभी का धर्म था। विशेषकर देश के राजा आये हैं, यह जानते हुए महर्षि वशिष्ठ ने यथोचित आदर-सत्कार के पश्चात् कहा-"राजन् ! आज मेरा बहुत सौभाग्य है कि आपने ससैन्य आत्मीय, परिजन वर्ग सहित मेरे आश्रम में पदार्पण किया है। शिकार आदि से आप लोग श्रांत-क्लांत और क्षुधार्थ हैं। अतः आप सभी नदी में स्नान-आन्हिक समापन करके आइये। मैं आप लोगों के लिये भोजन का प्रबंध करता हूँ।"

महर्षि-वाक्य सुनकर, राजा सहित सभी लोग नदी की ओर दौड़ पड़े।

बेटा ! तुम सोच रही होगी कि ऋषि के पास न धन है, न जन हैं। राजा, राज्य कर्मचारी वर्ग एवं विराट सैन्यवाहिनी के लिये खाने-पीने का प्रबंध कहां से करेंगे ?

हां बेटा ! वशिष्ठ को आदि ऋषि कहा जाता है। रहते थे – वे मर्त्यलोक में, किन्तु गमन था उनकी इच्छानुसार, स्वर्ग, पाताल, मर्त्य – तीनों लोक में। बड़े धीर, स्थिर, संयमी, निस्पृह थे – महर्षि वशिष्ठ।' देवलोक में भी उनकी मर्यादा थी। सर्व विद्या एवं सर्वज्ञान के ज्ञाता थे। थे तो वे राजाओं के गुरु, किन्तु वे धन सम्पत्ति रखते नहीं थे। साधारणतः गाभी (गाय) ऋषियों के आश्रम की शोभा थी। वशिष्ठ के पास भी एक गाय थी। गाय का नाम था – नंदिनी। नंदिनी कामधेनु थी। जो चाहिये वही उससे प्राप्त हो जाता था। अतः ऋषि ने नंदिनी को कहा – "नंदिनी ! गाधि-राज विश्वामित्र आज ससैन्य अपने आश्रम में अतिथि है, तुम सभी के भोजन तथा विश्राम का प्रवंध करो। वे इस समय स्नान-आन्हिक करने के लिये गये हुए हैं।"

नंदिनी स्वर्ग की गाभी सुरभि कामधेनु की वछड़ी थी। अलौकिक शक्तिमयी थी-नंदिनी। उसने अपनी शक्ति के प्रभाव से तुरंत ही वहां एक विराट नगर का निर्माण करवा दिया, जिसमें सुन्दर-सुन्दर गृह, स्वर्णनिर्मित साज-सज्जा से सुशोभित थे। सेवा के लिये पृथक्-पृथक् गृहों में स्वर्णपात्र, चर्व्य, चुष्य, लेह्य, पेय आदि उपादेय एवं स्वादिष्ट भोज्य पदार्थों आदि से परिपूर्ण थे। राजा के लिये भी सब प्रकार के राजोचित सुप्रबंध करके नंदिनी ने महर्षि को सूचित कर दिया।

कुछ ही समय के उपरान्त राजा भी अपने लोक-जन सहित स्नानादि से निवृत्त होकर आ गये। ऋषि ने सब को भोजन के लिये आह्वान करके यथोचित स्थान ग्रहण करने के लिये निवेदन किया। श्रान्त-क्लान्त-क्षुधार्त्त लोग अपने-अपने स्थान ग्रहण करके रुचि के साथ भोजन करने लगे। आश्चर्य की बात तो यह थी कि थाली खाली होते ही पुनः अपनी मनचाही वस्तु से भर जाती थी। कौन कहां से देता था, यह ज्ञात नहीं होता था। अमृततुल्य देव-भोग परम तृप्ति के साथ सभी ने इतना खाया कि उठना ही दूभर हो गया। किसी प्रकार आचमन समापन करके स्वर्णमंडित आरामदायक शैय्या पर लुढ़क गये। राजा के लिये भी राजोचित व्यवस्था थी। राजा ने भी आराम करने के लिये अपना स्थान ग्रहण किया, किन्तु

वे सोच में पड़ गये कि महर्षि ने ऐसा सुन्दर प्रबंध किस प्रकार कियां ? मैं तो देश का राजा हूँ, मेरे पास अतुल धन-सम्पत्ति है। लोक-जन का भी अभाव नहीं है, तो भी मैं चाहूँ तो महीनों व्यवस्था कराते रहने पर भी ऐसा प्रबंध कराने में असफल रहूँगा। ये सारी बातें बार-बार राजा के मन में आती रहीं। कभी-कभी मन में यह बात भी आती रही कि क्या यह ऋषि की माया तो नहीं है ? इसी प्रकार सोच-विचार करते हुए समय व्यतीत हो गया। जाते समय ऋषि से विदा लेने के लिये उनके सामने राजा विश्वामित्र उपस्थित हुए। ऋषि ने बड़े प्रेम से स्वागत करते हुए पूछा—"राजन् ! भोजन, विश्राम आदि में किसी प्रकार कष्ट तो नहीं हुआ ?" उत्तर में राजा ने बड़ी विनम्रता से कहा-"ऋषि श्रेष्ठ ! आपने जो किया वह तो अभूतपूर्व है। मेरे विचार में देवराज भी ऐसा प्रबंध नहीं कर पायेंगे। इसलिये बार-बार मेरे मन में यह बात आ रही है कि आपने यह सब कैसे किया ?"

महर्षि ने उत्तर में नम्रता से कहा-"यह तो मेरी नंदिनी की कृपा है। यह सब प्रबंध उसी का है।" राजा ने कहा-"यह गाभी तो आश्रम में शोभा नहीं देती। यह तो राजप्रासाद में ही शोभनीय है। आप मुझे यह गाभी दे दीजिये।"

ऋषि ने कहा-"राजन् ! नंदिनी मेरा सहाय, सम्बल, धन, सम्पत्ति सर्वस्व है। इससे मुझे सभी आवश्यक वस्तुएं प्राप्त होती रहती हैं। यदि नंदिनी न होती तो आप लोगों की सेवा मुझ से कैसे हो पाती ? अतः राजन् ! इस गाभी के लिये आप लोभ न कीज़िये।"

राजा ऋषि का अनुरोध प्रत्याख्यान करके नंदिनी को प्राप्त करने के लिये ऋषि पर बार-बार दबाव डाल रहा था, किन्तु महर्षि वशिष्ठ, राजा के दवाव में नहीं आये। तब राजा ने कहा-"आप स्वेच्छा से नहीं देंगे तो मैं वलपूर्वक नंदिनी को ले जा रहा हूँ। आपमें शक्ति हो तो रक्षा कीजिये।" यह कहकर नंदिनी के पास गये एवं उसे ले जाने की प्रचेष्टा करने लगे। नंदिनी उस समय सोकर विश्राम के साथ जुगाली कर रही थी। वह राजा की खींचतान से उठकर खड़ी हो गई एवं ऋषि के पास आकर सजल नेत्रों से कहने लगी-"महर्षि। क्या आपने मुझे राजा को सौंप दिया है ?" ऋषि ने

कहा-"नंदिनी ! मैं तुम्हें कैसे सौंप सकता हूँ ? तुम आजीवन मेरे साथ हो, किन्तु राजा बलवान है, उनके पास असंख्य सैन्य, सामंत हैं। उसी की शक्ति से वे तुम्हें बलपूर्वक ले जाना चाहते हैं। मैं तो भौतिक शक्ति में शक्तिहीन हूँ, तुम्हारी रक्षा कैसे कर पाऊंगा ? हां, तुम स्वयं की शक्ति से अपनी रक्षा कर पाओ तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है, वरन् प्रसन्नता होगी।"

ऋषि की बात समाप्त होते ही नंदिनी ने एक विराट हुंकार दी, जिससे उसके शरीर से असंख्य सशस्त्र सैनिक प्रकट हो गये एवं राजा विश्वामित्र की सैन्य के साथ संग्राम करने में प्रवृत्त हो गये। देव शक्ति के सामने राज-शक्ति कदली वृक्ष की भांति छिन्न-भिन्न हो गई। राजा विश्वामित्र किसी प्रकार अपने प्राण बचाकर बच निकले एवं राज-शक्ति से ऋषि-शक्ति की श्रेष्ठता मानकर उन्होंने ऋषि बनकर वशिष्ठ से प्रतिशोध लेने का संकल्प करके राज्यभार मंत्रियों पर न्यस्त करते हुए तपस्या के लिये अरण्य में प्रवेश किया।

बस, आज यहीं तक। अगली बार ऋषि-विश्वामित्र की तपस्या के विषय में लिखूंगा।

भगवान तुम्हें शक्ति दें !

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्र संख्या – १५

चि० भुलु !

मंगलानुशासनम्।

आशा है प्रभु के अनुग्रह से तुम निष्ठापूर्वक अपना कर्त्तव्य निभा रही होगी।

उस दिन के पत्र में ऋषि विश्वामित्र की तपश्चर्या के विषय में लिखने के लिये संकेत किया था। उनकी तपस्या अद्भुत थी। एकपाद, हेटमुण्ड आदि विभिन्न प्रक्रियाओं से ग्रीष्म ऋतु में चारों ओर अग्नि प्रज्वलित करके, शीत ऋतु में शीतल जल के प्रवाह में सारे शरीर को डुबाकर एवं वर्षा ऋतु में अविरल वारिधारा के नीचे

रहकर आदि जितनी कठोर साधनाएं थीं, वे सब प्रकार की साधनाएं उन्होंने आरंभ कीं, जो युग-युग तक चलती रहीं। उनकी ऐसी उग्र साधनाओं से धीरे-धीरे उनके पास दैव-शक्ति का आविर्भाव होने लगा जिससे देवराज इन्द्र भी भयग्रस्त हो गये।

तुम्हें पहले बताया था कि देवराज इन्द्र प्रत्येक क्षण अपनी इन्द्रासन छिन जाने की आशंका से भयग्रस्त रहते हैं। अतः इन्द्र ने सशंकित होकर सोचा कि विश्वामित्र इन्द्रासन लेने के लिये ऐसी कठोर तपस्या कर रहे होंगे, यह सोचकर उन्होंने अप्सरा मैनका को विश्वामित्र की तपस्या भंग करने के लिये भेज दिया। विश्वामित्र कठोर तपस्वी होते हुए भी राग, द्वेष, अभिलाषा से मुक्त नहीं हो पाये थे, क्योंकि उन्होंने तपस्या तो ऋषि वशिष्ठ से प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से प्रारंभ की थी। अतः मैनका के मोहिनी रूप में आकर वे मैनका के साथ रहने लगे। तपस्या टूट गई। इन्द्र का कार्य सिद्ध हुआ। लम्बे समय के उपरान्त विश्वामित्र इस मोहजाल से मुक्त हो सके और मैनका ने प्रस्थान किया। विश्वामित्र पुनः तपस्या में लीन हो गये। शनैः शनैः तप के द्वारा अलौकिक शक्तियां प्राप्त होने लगीं। इतनी शक्तियों के वे अधिकारी हो गये कि नयी-नयी सृष्टि करने का सामर्थ्य भी उनमें आ गया। आकाश मार्ग में चाहे जहां गमनागमन कर सकते थे। इसी प्रकार असीम तेज अर्जित कर लिया। किन्तु ऋषि वशिष्ठ से प्रतिशोध लेने का संकल्प अभी तक उन्होंने अपने मन से नहीं त्यागा। ऋषि वशिष्ठ को विभिन्न प्रकार से सताना प्रारंभ कर दिया। आश्रम को भांति-भांति से क्षति पहुंचाई। वशिष्ठ के शत-पुत्रों को मार डाला, किन्तु महर्षि वशिष्ठ पहले जैसे ही निस्पृह, शांत, धीर, हिमालय सदृश स्थिर थे। उनके मन में न शोक हुआ, न मनस्ताप। उनके नित्य नैमेत्तिक कार्यों में कोई अन्तर नहीं आया और दैनिक कार्यक्रम यथाविधि चलता रहा।

उधर विश्वामित्र के प्रताप से सारा संसार भयभीत रहता था। तपस्वी रूप में तो सबने स्वीकार कर लिया, किन्तु बिना वशिष्ठ की स्वीकृति के उस समय कोई ब्रह्मर्षि बन नहीं सकता था। और वे स्वयं को वशिष्ठ से श्रेष्ठ मानते थे। अहं तथा अभिमान में चूर-चूर हो गये थे। मन में वशिष्ठ से प्रतिशोध लेने की भावना में कोई

परिवर्तन नहीं हुआ, वरन् और भी वृद्धि हो गई। वे नये-नये चमत्कार प्रदर्शित करने लगे।

तुम्हें राजा हरिश्चन्द्र की कहानी ज्ञात है न, बेटा! इस प्रकार अनेक वर्षों तक समय व्यतीत करने के उपरान्त ऋषि विश्वामित्र घूमते-फिरते महर्षि वशिष्ठ के आश्रम के निकट पहुँच गये। सोचने लगे कि देखूं, वशिष्ठ की क्या स्थिति है? मैंने उनको बहुत क्षति पहुंचाई है, मेरा प्रताप उन्हें ज्ञात हो गया होगा। मैं अलौकिक शक्तियों का अधिकारी हो गया हूँ। अब तो मैं उनसे किसी भी अंश में कम नहीं हूँ। मैं चाहूँ तो अपनी शक्ति के प्रभाव से उनका निधन भी कर सकता हूँ। यह सब सोच-विचार करते हुए महर्षि वशिष्ठ के क्षत-विक्षत आश्रम के अन्दर आकर छिप गये।

बस, आज यहीं तक।

भगवान तुम्हें धृतिसम्पन्न करें!

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्रसंख्या–१६

चि० भुलु!

मंगलानुशासनम्।

आशा है दयामय ईश की कृपा से तुम कुशल-मंगल होगी।

उस दिन के पत्र में ऋषि विश्वामित्र के वशिष्ठ आश्रम में अन्दर आकर छिपने के विषय में लिखा था। आज के पत्र में महर्षि वशिष्ठ के विशाल हृदय का परिचय तुम्हें ज्ञात हो जायगा।

महर्षि वशिष्ठ प्रतिदिन की भांति आज भी सूर्यास्त के पश्चात् सन्ध्या वंदनादि से निवृत्त होकर कुटिया में आये। ऋषि-पत्नी अरुन्धती देवी ने कहा-"देव! मैं तो पुत्र-शोक विस्मृत नहीं कर पा रही हूँ। विश्वामित्र कैसे क्रूर हैं, जिन्होंने विना अपराध के ही हमारे एक-एक करके सभी १०० पुत्रों को मार डाला। आपने अनादि, अनन्त शक्ति के अधिकारी होते हुए भी कुछ भी प्रतिकार नहीं किया। अन्यायी को दंडित नहीं करने पर अन्याय की सीमा में

निरंतर वृद्धि होती रहती है। परिणामतः उसका दुष्प्रभाव बढ़ता जाता है। ऋषि ने शांत, धीर एवं गंभीर वाणी में उत्तर दिया— "अरुन्धती ! विश्वामित्र का कार्य विश्वामित्र ने किया, मैं उनसे कैसे व क्यों प्रतिशोध लूं ? मुझे ज्ञात है—उन्होंने बड़ी तपस्या करके अलौकिक कार्य करने का अधिकार प्राप्त कर लिया है। किन्तु मेरे मन में दुःख इसलिये होता है कि इतनी शक्ति अर्जित करने के उपरान्त भी वे मन से द्वेष नहीं त्याग सके। हां, अरुन्धती ! प्रतिशोध लेना हो तो, यह होना चाहिये कि उनके मन से सव प्रकार की मलीनता व अंधकार दूर हो जाय, सर्वश्रेष्ठ ऋषित्व प्राप्त हो जाय।"

बेटा ! तुम्हें, पहले बताया था न ? विश्वामित्र वशिष्ठ-आश्रम में छिपे हुए हैं, अतः वशिष्ठ-अरुन्धती वार्त्तालाप वे कान लगाकर सुन रहे थे। ऋषि वशिष्ठ का अन्तर्निहित शुभकामना-वाक्य सुनकर विश्वामित्र का मन अनुताप से द्रवित हो उठा तथा मनस्ताप होने लगा कि वे इतने दिन तक अपने को ऋषि कहलाकर अहंकार में थे। वे सोचने लगे कि मैं तो ऋषि होने के योग्य नहीं हूं। वशिष्ठ कितने महान हैं, मैं तो उनकी चरण-धूलि होने का भी अधिकारी नहीं हूं। उन्हें आत्मग्लानि की अग्नि दग्ध करने लगी। वे छिपकर नहीं रह सके। अंतराल से निकलकर वे वशिष्ठ-कुटिया के समक्ष खड़े हो गये। वशिष्ठ ने देखते ही कहा—"आइये, ऋषि विश्वामित्र ! अंदर पधारिये, यह तो आपकी ही कुटिया है।"

ऋषि विश्वामित्र ने महर्षि वशिष्ठ के चरणों में गिरकर चरण पकड़कर कहा-"महर्षि ! मुझे क्षमा कीजिये, मैं पापी हूं, ऋषि नाम का कलंक हूं। आपसे प्रतिशोध लेने के लिये तपस्वी बना इसलिये मन से ईर्ष्या, द्वेष लुप्त नहीं कर पाया, वरन् और भी वृद्धि हुई है। मैंने आपको कितनी क्षति पहुंचाई है। आपके प्रिय शत पुत्रों का निधन किया एवं आज आया आपका निधन करने के लिये। इसलिये आपकी कुटिया के पास छिपकर अवसर खोज रहा था। किन्तु आपके विशाल हृदय की क्षमा वाणी सुनकर मैं समझ गया कि ऋषि वनना सहज नहीं है। आपका हृदय स्वर्ग, मर्त्य, पाताल, तीनों लोकों में अद्वितीय है। मैंने तीनों लोकों का भ्रमण किया है,

आज आपने मेरे ज्ञानचक्षु खोल दिये हैं, आप ही मेरे गुरु हैं। आप मुझे क्षमा कीजिये।"

दयार्द्र हृदय वशिष्ठ ने उनको पदतल से सस्नेह उठाकर गले से लगा लिया एवं कहा-"ऋषि विश्वामित्र! आपकी इस आत्मग्लानि ने ही आपको समस्त पंकिलता से मुक्त कर दिया। आज से आप यथार्थ रूप से ऋषिपद पर अभिषिक्त हुए हो। यह लीजिये यज्ञोपवीत जो वशिष्ठ दे रहा है। आज आप क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गये हैं, आज से आप ब्रह्मर्षि कहलायेंगे।"

बेटा! तुम समझ चुकी होगी, ब्राह्मण होने के लिये कितने गुण होने चाहिये—त्याग, सत्य, क्षमा, निःस्वार्थपरता ही ब्राह्मण का धर्म है।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

गीता—अध्याय ५, श्लोक-१८

हां, बेटा! यम-भवन में अतिथि नचिकेता की सेवा-प्रसंग के मूल विषय से हटकर हम लोग प्राचीन भारत की अतिथि-सेवा एवं ब्राह्मण तथा ब्रह्मशक्ति के विषय की ओर आ गये थे। अब पुनः हम लोग लौटें अपने मूल प्रसंग की ओर।

हां बेटा! उस दिन हम लोग उपवासी नचिकेता को यम-भवन में छोड़कर आये थे। अब नचिकेता की क्या स्थिति है? यमराज आये या नहीं? अगली बार तुम्हें यमपुरी में नचिकेता की यम-भेंट के विषय में लिखूंगा।

प्रभु तुम्हारा कल्याण करें!

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्र संख्या—१७

चि० भुलु!

मंगलानुशासनम्।

आशा है परम कल्याणमय प्रभु के अनुग्रह से तुम प्रसन्न होगी।

यमराज की प्रतीक्षा में नचिकेता तीन दिन व तीन रात्रि तक यमपुरी में उपवासी रहा। तीन दिन के उपरान्त यमराज प्रवास से लौटे। उन्होंने देखा कि परिवार के सभी लोग विमर्ष हैं। किसी के मुख-मण्डल पर प्रसन्नता की झलक नहीं। सभी मुरझाये जैसे हो गये। यमराज यह स्थिति देखकर शंकित हो गये। प्रवास-गमन के पूर्व सभी को सकुशल देखकर गये थे, इन तीन दिनों में क्या हो गया? किसी अशुभ सूचना के भय से पूछने का साहस भी नहीं कर रहे थे। चारों और दृष्टि डालकर देखा कि परिवार प्रतिजन सब ठीक ही हैं। पत्नी तथा मंत्रियों के प्रति बार-बार जिज्ञासु दृष्टि से देखकर सोचने लगे, क्या हो गया इन लोगों को? अन्त में सब ठीक देखकर निःशंकित होकर पूछने पर सबने बताया – "आपके प्रवास-प्रस्थान के दिन अर्थात् तीन दिन पूर्व एक अतिथि ब्राह्मण बालक आपकी दर्शनाभिलाषा में आया। हम लोगों ने उसके भोजन आदि की व्यवस्था का प्रयास किया, किन्तु बालक बिना आपसे भेंट किये जल भी ग्रहण करने के लिए सहमत नहीं हुआ। तभी से यह बालक कुछ भी ग्रहण किये बिना भूखा-प्यासा इस यमपुरी के द्वार पर स्थित है। एक तो अतिथि, तदुपरि ब्राह्मण। ब्राह्मण अतिथि अग्नि सदृश होता है। सद्गृहस्थ का महान धर्म अतिथि की सेवा करना है। प्रज्वलित अग्नि को बुझाने के लिये जल-सिंचन आवश्यक हो जाता है। धर्मराज! आप ज्वलंत अग्नि के समान उस तेजस्वी ब्राह्मण बालक के पद-प्रक्षालन के लिये तुरन्त जल ले जाइये। आप स्वयं सेवा करेंगे तो बालक शांत होगा। हमारी समस्त प्रचेष्टाएं असफल रहीं। जिस गृह में अतिथि-ब्राह्मण बिना अन्न-जल ग्रहण किये रहते हैं, उस गृह का अर्थात् परिवार, परिजन, आश्रित, प्रजावर्ग सबका अमंगल होता है। ज्ञात, अज्ञात वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छाएं, नानाविध क्रियाएं, कुआं, तालाब, धर्मशाला, पंथशाला, वृक्षारोपण, जाग-यज्ञ, दान, पुण्य आदि सभी का फल नष्ट हो जाता है। अतिथि का रुष्ट होना अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण होता है। अतः कृपया आप तुरंत पाद्यार्घ तथा जल ले जाकर अतिथि को शांत कराकर सबकी अनंत नरक-गमन से रक्षा कीजिये।"

इस बात को सुनते ही यमराज जलभरा स्वर्णकलश लेकर दौड़े। अतिथि ब्राह्मण बालक नचिकेता के सम्मुख उपस्थित होकर

यथाविधि पाद्यार्घ प्रदान द्वारा विनयपूर्वक कहा – "हे ब्राह्मण-तनय ! तुम नमस्य, पूजनीय अतिथि हो, अथच तुम मेरे गृह में तीन दिन से विना अन्न-जल ग्रहण किये उपवासी रह रहे हो। मुझसे बड़ा अपराध हो गया है। मैं प्रवास में था। अतः तुमको उपवास-कष्ट सहन करना पड़ा। मेरा अपराध क्षमा करके मेरा तथा समग्र राज्य का कल्याण करो। मैं जानता हूं तुम समस्त गुणों से गुणान्वित हो। शांत, धीर, स्थिर, क्षमाशील, निर्लोभी हो, तो भी मेरी पुरी में त्रिरात्रि तक उपवासी रहे, अतः मैं एक-एक रात्रि के लिये एक-एक करके तीन वर तुम्हें देना चाहता हूं, तुम्हारी जैसी अभिलाषा हो, मांग सकते हो, मैं प्रदान करने लिये अंगीकार कर रहा हूं।"

प्यारी बिटिया ! अब तुम समझ लो। प्राचीन भारत क्या था ? यमराज जिनके नाम से ही सारे संसार के प्राणी संत्रस्त रहते हैं, वह दण्ड मुण्ड का स्वामी यमराज भी अतिथि रुष्ट होने के भय से कितना भयभीत तथा म्रियमाण हो गया था, यह उदाहरण केवल भारत के लिये ही नहीं समग्र मानव समाज के लिये भी आदर्श है। अतिथि को नारायण समतुल्य, वैदिक तथा प्राचीन भारत मानता था। दाता कर्ण की कहानी तो तुम्हें पहले ही सुनाई ही है।

वस, आज यहीं तक। अगली बार यम के वर के विषय में लिखूंगा।

भगवान तुम्हें महा ऐश्वर्य प्रदान करें !

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्र संख्या – १८

चि० भुलु !

मंगलानुशासनम्।

आशा है श्री भगवान की कृपा से तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक होगा।

उस दिन के पत्र में 'वर' के विषय में लिखने के लिये संकेत किया था।

सत्ययुग, वैदिकयुग तथा प्राचीन भारत में वरदान प्रथा थी। देव, देवी, गुरु, ब्राह्मण, मुनि, ऋषि आदि को सेवा में संतुष्ट करके

भक्त लोग वांछित वर अर्थात् अपनी मांग पूर्ण करते थे। दाता भी इतने मुक्त-हस्त तथा उदार होते थे कि अग्र, पश्चात् पर विना ध्यान दिये भक्त की प्रार्थना पूर्ण करते थे। इस उदाहरण के परिणामस्वरूप दाता को भी कभी-कभी प्रतिक्रिया सहन करनी पड़ती थी। विशेषतया मंगलमय शिव, वरदान के विषय में सब से अग्रगण्य थे। इस संबंध में आज तुम्हें एक रोचक कहानी के विषय में लिख रहा हूँ।

बहुत प्राचीन काल की वात है। एक असुर ने किसी विशेष उद्देश्य को लेकर शिव की कठोर तपस्या में स्वयं को निमग्न कर दिया। तुम्हें ज्ञात है कि असुरों का कार्य ही था कि सुर अर्थात् देवता, ऋषि-मुनि, ब्राह्मण, सदाचारी आदि का अनिष्ट-साधन करना। यह असुर भी भोलेनाथ शिव को संतुष्ट करने के लिए कठोर तपस्या में रत होकर ध्येय वस्तु की प्राप्ति हेतु स्वयं के वलिदान के लिये प्रस्तुत हो गया। भोलेनाथ तो भोले ही थे। संसार के अपामर जनसाधारण तथा धनी-मानी, दीन-दुःखी, निगृहीत सभी के मंगलकारी हैं। जिनका ध्येय ही परोपकार करना है उन्हें सोचने-विचारने का समय कहां मिलता है। वे तो प्रति क्षण चौकन्ने रहते हैं – किसी ओर से आर्त्त-आह्वान के लिये। इस असुर की कठोर तपस्या के विषय में जव भगवान शिव ने जाना तो असुर के सामने उपस्थित होकर कहा – "हे भक्त असुर, तुम्हारी तपस्या सफल हो गई। तुम नेत्र खोलकर देखो, मैं आ गया हूँ। तुम्हें क्या चाहिये, मैं प्रार्थित वस्तु देने के लिये अंगीकार कर रहा हूँ।"

असुर ने कहा – "भगवन्! जव आप मेरे प्रति इतने प्रसन्न हैं तो मैं आपसे यह प्रार्थना कर रहा हूँ कि मुझे ऐसा वर दें कि जिसके सिर पर मैं अपना हाथ रखूं वह तुरंत भस्म हो जाय।"

सुनते ही अग्र-पश्चात् विवेचना के विना ही भोलेनाथ ने कह दिया – "तथास्तु! अर्थात् तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी एवं आज से तुम "भस्मासुर" नाम से विख्यात होओगे।" यह कहकर भगवान शिव चल दिये। भस्मासुर वहुत प्रसन्न हुआ। असुर के स्वभाव के विषय में मैं पहले ही बता चुका हूँ। असुर के मन में तुरंत यह बात आ गई कि वर तो मिल ही गया है किन्तु इसकी प्रयोगात्मक परीक्षा भी हो जानी चाहिये। "कहां जाऊं? किसके

सिर पर हाथ रखूं ? तब तक तो शिवजी चले जायेंगे, अतः क्यों न मैं इसका प्रथम प्रयोग शिवजी पर ही कर लूं।" विचार मन में आते ही भगवान शिवजी के पीछे दौड़ा एवं उन्हें ठहरने के लिये पुकारने लगा। पीछे से आवाज सुनकर शिवजी ने मुड़कर देखा कि भस्मासुर भागते हुए आ रहा है। भगवान शिव रुक गये। असुर को निकट आते ही कहा—"और क्या चाहिये भाई ! तुम्हारी अभिलाषा तो मैं पहले ही पूर्ण कर चुका हूँ।" भस्मासुर ने कहा—"भगवान् ! आपने वर तो दे दिया, अब मैं वर की परीक्षा करने हेतु किसके पास जाऊं ? आप तो परम दयालु हैं। कृपया आप अपना मस्तक किंचित् नीचे की ओर झुका लें, मैं आपके मस्तक पर ही सर्वप्रथम प्रयोग करके देख लूं।"

शिवजी सोचने लगे कि यह तो एक समस्या बन गई। वर दिया मैंने ही और दुष्परिणाम भी मेरे को ही भोगना पड़ेगा। तब उन्होंने कहा—"भस्मासुर, यह तुम्हारा अन्याय है, भाई ! वर तो मैंने ही दिया है और प्रयोग भी मेरे ऊपर करना चाहते हो। यह तो कदापि नहीं हो सकता है। तुम अन्य किसी पर प्रयोग करके देखो।" कहकर शिवजी शीघ्रता से प्रस्थान करने लगे, किन्तु असुर छोड़ने वाला थोड़े ही है। वह भी पीछे-पीछे, रुक जाओ, रुक जाओ, कहते हुए भागने लगा। भोलेनाथ ने देखा कि असुर पीछे-पीछे आ रहा है तो वे भी दौड़ने लगे।

अब तुम समझ लो कि आगे शिवजी भाग रहे हैं और पीछे-पीछे भस्मासुर हाथ ऊंचा करके भागते हुए आ रहा है। दृश्य कैसा रोचक है ? देव समाज, मनुष्य समाज, यह सब दृश्य देखकर स्तंभित हो गये। भागते हुए रास्ते पर देवता, मुनि, ऋषि जो भी मिलते, शिवजी से भागने का कारण पूछते थे। परन्तु शिवजी कैसे अपने संकट को कहते, क्योंकि कहने के लिये खड़ा होना पड़ता और खड़े होते ही भस्मासुर आ पकड़ता, इसलिये बिना उत्तर दिये ही दौड़ते रहे, सभी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हैं। अथच, कुछ कर नहीं पा रहे हैं। समझ में कुछ नहीं आ रहा है। अन्त में एक महात्मा ने शिवजी के साथ-साथ भागते-भागते सारा विवरण ज्ञात कर लिया। उन्होंने सोचा यह दूरन्त असुर तो सारे विश्व का नाश कर देगा। इसे तो

अपने आप ही भस्म होना चाहिये। यह सोचकर शिवजी से पृथक होकर भागते हुए भस्मासुर के मार्ग से थोड़ी दूर ठहरकर उसके निकट आने की प्रतीक्षा करने लगे। किन्तु कोई उपाय भी नहीं सूझ रहा है। बेटा! भगवान की लीला से असुर के मस्तिष्क पर सूखा हुआ तृण या इसी के समान अन्य वस्तु पड़ी हुई है। महात्मा को अवसर मिल गया। उसके पास आते ही महात्मा ने कहा—"क्या है भस्मासुर! सिर पर क्या लेकर कहां भाग रहे हो?" सुनते ही भस्मासुर ने अपने सिर पर देखने के लिये हाथ रखा। बस, सिर पर हाथ लगा और भस्मासुर स्वयं भस्म हो गया। सारा विश्व असुर के भय से मुक्त हो गया। भोलेनाथ शिव ने शांति की सांस ली।

अब बेटा! देख लिया न, बिना सोचे-विचारे वर देने में क्या होता है? और असुरों की वृत्तियां भी कैसी हैं? उपकारी के प्रति वे किस प्रकार की कृतघ्नता रखते हैं? आजकल हमारे समाज में भी असुरों का उदाहरण कम नहीं मिलता, वरन् यथार्थ सेवक कर्त्तव्यनिष्ठ, सरल, निर्लोभी, परोपकारी को तो कोई मूल्य ही नहीं देता।

बस, आज यहीं तक। अगले दिन नचिकेता ने क्या वर मांगा है? और यमराज ने क्या दिया है? लिखूंगा।

प्रभु तुम्हें श्री एवं समृद्धि प्रदान करें!

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्रसंख्या – १९

चि० भुलु!

मंगलानुशासनम्।

आशा है ईश्वरानुग्रह से तुम्हारे ज्ञानार्जन में प्रगति हो रही होगी।

उस दिन यम द्वारा नचिकेता को वर-प्रदान करने के प्रसंग में भस्मासुर की कहानी आ गई थी। आज पुनः उसी प्रसंग में आ रहा हूं।

यमराज ने नचिकेता को उसकी इच्छानुसार तीन वर मांगने के लिये कहा। नचिकेता तो शिशु ही था। पिता से बिछुड़कर आया था एवं यह भी ज्ञात था कि उसके पिता ने उसे स्वेच्छा से यम के पास नहीं भेजा है, क्रोध में डराने के लिये यम के पास भेजने को कहा था। वह सोचने लगा कि पिता को बहुत मनस्ताप हो रहा होगा। सुना है यमपुरी से लौटने के पश्चात् लोगों का चेहरा बदल जाता है, अर्थात् पूर्ण अवयव नहीं रहता। मैं यदि पुनः पिता के पास जाऊं तो पिता मुझे पहचान नहीं पायेंगे। अतः क्यों न तीन वरों में से एक वर ऐसा ही मांग लूं कि पिता मुझे सहज ही पहचान लें। यह सब सोचकर नचिकेता ने कहाः—

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो।
त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे॥
कठोपनिषद् अध्याय १ वल्ली १ श्लोक १०

"हे मत्यु अधिपति! आप वर देना चाहते हो तो मुझे पहले यह वर दीजिये कि मेरे पिता मेरे प्रति क्रोधरहित, शांत संकल्प तथा प्रसन्नचित्त हो जायं एवं मेरे विछोह से जो कष्ट उन्हें हुआ है उससे वह मुक्त रहें। आपसे विदा लेकर घर जाने के बाद भी वे मुझे सहज में पहचान सकें और सस्नेह ग्रहण करें।"

यम ने कहा—

यथा पुरस्ताद् भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः।
सुखं रात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वां ददृशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम्॥
कठोपनिषद् अध्याय १ वल्ली १ श्लोक

"हे ब्राह्मण तनय! तुम जब वापस जाओगे तब तुम्हारी अभिलाषानुसार पिता को शांतचित्त देख सकोगे एवं वे तुम्हें पूर्ववत् पहचानकर स्नेह करेंगे।"

पितृभक्त बालक को प्रथम वर की प्राप्ति के बाद दूसरा वर लेने के लिये यमराज ने आग्रह किया। नचिकेता ने सोचा, प्रथम वर तो मेरा व्यक्तिगत था। अब समग्र मानव समाज के लिये क्यों न द्वितीय वर मांग लूं। अतः नचिकेता ने कहा—

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति ।
उभे तीर्त्वाऽशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ।।

कठोपनिषद् अध्याय १ वल्ली १ श्लोक-१२

"हे यमराज ! दूसरे वर में यह जानना चाहता हूं कि स्वर्ग में रहने वाले लोगों को न भूख है, न प्यास है, न रोग है, न वार्द्धक्य है न वहां आपका प्रवेशाधिकार है अर्थात् वहां के लोगों की मृत्यु भी नहीं होती। अतः जिसके आधार पर इस तत्व को जानकर उन लोगों को देवत्व प्राप्त होता है उस स्वर्ग का साधन-भूत अग्नि का महत्व आप जानते हैं। मैं उसे जानने का वहुत उत्सुक हूं एवं श्रद्धा भी रखता हूं। कृपया आप उसका वर्णन करके मेरी जिज्ञासा पूर्ण करें।"

वस, आज यहीं तक। यमराज ने क्या उत्तर दिया, यह अगली वार लिखूंगा

भगवान तुन्हें अविरत सद्वुद्धि प्रदान करें !

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्र संख्या – २०

चि० भुलु !

मंगलानुशासनम् ।

प्रभु की अनुकम्पा से तुम कुशलतापूर्वक अपना कर्त्तव्य पालन कर रही होगी।

उस दिन के पत्र में यमराज के द्वितीय वर-प्रदान के विषय में लिखने का संकेत किया था।

नचिकेता की प्रार्थना के उत्तर में यमराज ने कहा –

प्र ते ब्रवीमि तदु में निबोध स्वर्ग्यमग्नि नचिकेतः प्रजानन् ।
अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम् ।।

कठोपनिषद् अध्याय १ वल्ली १ श्लोक-१४

"हे नचिकेता ! वह अग्नि हृदयरूपी गुहा में स्थित अनंत सत्ता की है, आधार है, वही लोक-सृष्टि का मूल कारण है। वह स्वयं

देवता, प्रभु, और ज्ञाता के रूप में प्रकाशित होती है, जिसकी अभिव्यक्ति ब्रह्म है।"

इस प्रकार मृत्यु अधिपति यम ने उस अग्नि के संबंध में अनेक तथ्य व्यक्त किये। बालक नचिकेता ने अतीव ध्यानपूर्वक इन तथ्यों को पूर्णरूपेण हृदयंगम किया एवं अक्षरशः यम के समक्ष पुनरावृत्ति करके यम को अत्यधिक प्रभावित कर दिया। प्रसन्न यम ने कहा– "मैं स्वयं भी एक वर देता हूं कि आज जिस अग्नि के विषय में तुमने हमसे सुना एवं पुनः हमें सुनाया वह आज से तुम्हारे नाम से अभिहित की जायगी। अतः उस अग्नि के अनेक रूप वाली माला को भी ग्रहण करो। जब मनुष्य इस "नचिकेता-अग्नि" को जानकर तीन बार चयन अर्थात् प्राप्त करके प्रदीप्त देखेगा तब वह हृदयरूपी महाकाल के भयावह कराल ग्रास से मुक्त रहेगा, अर्थात् अनिन्द्य सुन्दर, रमणीय, स्वर्गीय आनन्द उपभोग करने में समर्थ रहेगा। जन्म, मृत्यु, सुख-दुःख से परे रहेगा। यही तुम्हारी प्रार्थित दूसरे वर की स्वर्ग की साधनभूत अग्नि है। यह अग्नि तुम्हारे नाम के अनुसार अब से "नचिकेता-अग्नि" नाम से अभिहित होगी।

"अब तुम तृतीय वर मांगो" – यमराज ने कहा–

बस बेटा ! आज यहीं तक सीमित रखा है। पुनः अगले दिन तृतीय वर में नचिकेता ने जो मांगा, लिखूंगा।

ईश्वर तुम्हारा कल्याण करें !

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्र संख्या – २१

चि० भुलु !

मंगलानुशासनम्।

परम कल्याणमय प्रभु की कृपा से तुम स्वस्थ एवं प्रसन्न होगी।

उस दिन द्वितीय वर में प्राप्त स्वर्ग की आधारभूत अग्नि के विषय में तुम्हें लिखा था। तुमने तदुत्तर में तीसरे वर के विषय में

वड़ी उत्सुकता प्रकट की है। किन्तु मैं अतीव कार्यव्यस्त रहने के कारण यथासमय लिख नहीं पाया। आज लिख रहा हूँ।

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाऽहं वराणामेष वरस्तृतीयः ।।
कठोपनिषद् अध्याय १ वल्ली १ श्लोक २०

नचिकेता ने कहा – "तृतीय वर के अन्तर्गत आपसे मैं यह प्रार्थना कर रहा हूँ कि लोगों के मन में प्रायः एक प्रश्न आता रहता है कि मृत्यु के पश्चात् आत्मा का क्या होता है। वह रहती है या नहीं? इस दुविधापूर्ण प्रश्न का समाधान प्रत्यक्ष या अनुमान से नहीं होता, क्योंकि यह समाधान **"विज्ञान"** के अधीन है। इसलिये आपसे इस रहस्य का भलीभांति समाधान चाहता हूँ।"

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा न हि सुज्ञेयमणुरेष धर्मः।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ।।
कठोपनिषद् अध्याय १ वल्ली १ श्लोक २१

यम ने कहा – "हे ब्राह्मणतनय ! इस वर के अतिरिक्त तू अन्य कोई वर मांग ले। क्योंकि यह रहस्य युग-युगान्तर से रहस्य ही वना रहा है। केवल यही नहीं, देवता भी इस विषय में प्रायः अनभिज्ञ हैं। यह बड़ा दुर्ज्ञेय तथ्य है। यह अणुसम सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। जटिल रहस्यमय है। अतः तू इसे छोड़कर कोई लाभयुक्त अन्य वर मांग ले।"

नचिकेता ने कहा – "हे, मृत्युनाथ यमराज ! आपने स्वयं ही कहा है कि यह देवताओं को भी अज्ञेय है, अबोध्य है, इसलिये इस रहस्य को जानने की मेरी उत्सुकता और भी प्रबल हो गई है। मैं समझता हूँ कि इसका समाधान आप ही कर सकते हैं। आपके अतिरिक्त अन्य किसी के द्वारा संभव नहीं है, अतः मुझे अन्य कोई वर की इच्छा नहीं है।"

बेटा ! नचिकेता का तीसरा वर एक महाज्ञानी का वर है। बहुत सूक्ष्म तत्त्व का वर है एवं जटिल भी है। देखो बेटा ! नन्हें से बच्चे ने एक ऐसा प्रश्न किया है जो कि मनुष्य के मन में उसकी बुद्धि के विकास के समय से निरंतर चला आ रहा है। वह देवताओं

को भी अज्ञात है। एकमात्र ज्ञाता मृत्यु अधिपति यमराज ही हैं, क्योंकि मृत्यु के पश्चात् पाप-पुण्य की तुलना के अनुसार मानदण्ड निर्धारित करने वाले यम ही एकमात्र अधिकारी हैं। हमारे हिन्दू शास्त्र कें अनुसार यमपुरी में आत्मा के पाप-पुण्य की समीक्षानुसार नरक में दण्ड और स्वर्ग में सुख का विधान है। आत्मा को पुनर्जीवित करने के उपरान्त ही उभय विधान की व्यवस्था है।

वेटा ! तुम इसके प्रत्यक्ष प्रमाण के विषय में प्रश्न उठा सकती हो, किन्तु संसार में ऐसी अनेक वस्तुओं या घटनाओं की कहानियां हैं जो कि प्रत्यक्षतया प्रमाण-सापेक्ष नहीं हैं। सृष्टि में मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष-लता, वनस्पति आदि सभी की उत्पत्ति का रहस्य, रहस्य ही रहेगा। जो तथ्य प्रामाणिक रूप में हमारे सामने लाये जाते हैं वे भी अनुमान पर ही निर्भर हैं। ऐसा एक प्रश्न छोटे से बच्चे ने उठाकर यमराज को महान समस्या में डाल दिया। अतीव दुर्बोध्य प्रश्न बालक को कैसे समझाया जाय, इसके अतिरिक्त यह तो परम आत्म-तत्त्व है, जो मानव की चिर प्रतीक्षित आकांक्षित वस्तु है, इसलिये यमराज ने इस प्रश्न को टालने का प्रयास किया एवं नाना प्रकार की लोभनीय वस्तुएं देने की बात कहकर बालक को प्रवंचित करने की प्रचेष्टा में उन्होंने कहा—

शतायुषः पुत्रपौत्रान्वृणीष्व बहून्पशून्हस्तिहिरण्यमश्वान्।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ।।२३।।
एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च।
महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानां त्वा कामभाजं करोमि ।।२४।।
ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामांश छन्दतः प्रार्थयस्व।
इमा रामाः सरथाः सतूर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः।
अभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः ।।२५।।

कठोपनिषद् अध्याय १ वल्ली १

"हे ब्राह्मण बालक ! तुम अभी भी छोटे बच्चे हो, न तो तुम यह समझ ही पाओगे, न इसमें तुम्हारा लाभ होगा। क्यों न तुम इस प्रश्न के बदले में १०० वर्ष की आयु के पुत्र, पौत्र, अगणित पशुधन जैसे हस्ति, अश्व, गाय और स्वर्ण, देवकन्या सदृश रूपवती स्त्री-रत्न सहित विशाल साम्राज्य मांग लो एवं स्वयं जितने वर्ष

जीवित रहने की इच्छा हो, मांग लो। जिसके अधिपति होकर दैवी, मानवी सब प्रकार की कामनाएं, वासनाएं भोगने के अधीश्वर बन सकोगे। अतः तुम मृत्यु संबंधी प्रश्न छोड़ दो।"

बस आज यहीं तक बेटा! अगले पत्र में तुम देखोगे कि नन्हें बालक ने यमराज के प्रलोभन को किस प्रकार ठुकराया।

भगवान तुम्हें अपार शक्ति प्रदान करें!

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्र संख्या – २२

चि० भुलु!

मंगलानुशासनम्।

प्रभु की कृपा से तुम कुशल-मंगल होगी।

उस दिन नचिकेता के प्रार्थित वर-प्रदान से छुटकारा पाने के लिये यमराज ने जिस प्रलोभन में उसे डालने की प्रचेष्टा की थी उसके विषय में लिखा था। आज नचिकेता की प्रतिक्रिया के विषय में लिख रहा हूँ। नचिकेता ने कहा –

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥२६॥
न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्वा।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥२७॥
अजीर्यताममृतानामुपेत्य जीर्यन्मर्त्यः क्वधः स्थः प्रजानन्।
अभिध्यायन्वर्णरतिप्रमोदानतिदीर्घे जीविते को रमेत ॥२८॥
यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्साम्पराये महतिब्रूहि नस्तत्।
योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते ॥२९॥

कठोपनिषद् अध्याय १ वल्ली १

"हे मृत्यो! आपके देय ये सभी पदार्थ मरणधर्मी मनुष्य के पास कब तक रहेंगे? इनका अस्तित्व कल भी रहेगा, या नहीं, कौन जाने? अप्सरादि रमणियों के विषय में आपने जो बताया है

वह तो मनुष्य को जीर्ण-शीर्ण-क्षीण कर देते हैं, जीवन को अल्पकालीन बना देते हैं। वे धर्म, वीर्य, प्रज्ञा, तेज, और यश को निरर्थक अर्थात् नष्ट कर देते हैं। आपने जो दीर्घ जीवन प्रदान करने के लिये कहा वह स्थायी नहीं है, क्योंकि ब्रह्मा की आयु भी सीमित है। अतः मुझे दीर्घायु ग्राह्य नहीं है। हे, महिषवाहन! धन, ऐश्वर्य, साम्राज्य, कामना, वासना, अप्सरा, किन्नरी – भोग आदि समस्त सम्पद क्षणभंगुर हैं। जीवन में वह कौन चाहता है? ये सारी वस्तुएं आप स्वयं अपने पास रखें। नचिकेता को उनमें से किसी की आवश्यकता नहीं है। मैं वही वर चाहता हूँ जो कि दुर्बोध्य, अज्ञेय व परलोक विषय में विज्ञान सम्मत तथ्य है। इसके अतिरिक्त मैं अन्य कुछ भी नहीं चाहता।"

बिटिया! देखा तुमने। नन्हें से बच्चे ने किस प्रकार श्रेष्ठतम प्रलोभनों से स्वयं को मुक्त रखकर यमराज को मूल वर प्रदान करने के लिये बाध्य किया है। यदि यह बालक साधारण बालक की भांति यमराज के मायाजाल में फंस जाता तो आज विश्व इस महा-मूल्य सम्पद से वंचित रह जाता। जैसा कि मैंने पहले बताया था कि सृष्टि के आदिकाल से यह प्रश्न मनुष्य के मन में बारम्बार आता रहा है। किन्तु समाधान नहीं मिल सका। इस बाल तपस्वी जन्मजात आत्मदर्शी शिशु ने महाज्ञान रहस्य का रुद्ध कपाट स्वर्ग, मर्त्य, पातालवासी के लिये खुलवा दिया है। बेटा! वह तो बालक नहीं है – बालकरूपी अनंत प्रकाशमय ज्ञान रश्मि का आविष्कारक स्वरूप है।

नचिकेता को प्रलोभनयुक्त परीक्षा से उत्तीर्ण देखकर एवं महाज्ञान ग्रहण करने के योग्य समझकर यमराज बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा –

"हे नचिकेता! मनुष्य स्वयं ही बंधन में आबद्ध हो जाते हैं और चाहे अपने आप ही मुक्त रह सकते हैं। मरुभूमि के तृष्णातुर मृग की भांति मनुष्य इस मायारूपी मरीचिका के पीछे-पीछे भागते रहते हैं इसलिये दुःख, दैन्य, क्लेश आदि मनुष्य को भोगने पड़ते हैं। हे ऋषि पुत्र! श्रेय और प्रेय अर्थात् विद्या और अविद्या संयुक्त रूप से मित्र की भांति मनुष्य के समक्ष दोनों एक साथ उपस्थित होते हैं;

किन्तु दोनों परस्पर विरोधी अर्थात् विपरीत फल प्रदान करते हैं — जो विचारशील विवेकी व्यक्ति होता है, यह ध्यान से देखता है एवं पार्थक्य कर लेता है। जैसे राजहंस दूध से जलीय अंश को पृथक् कर शुद्ध तत्व को पी जाता है उसी प्रकार विवेकी मनुष्य प्रेय को छोड़कर श्रेय को ही ग्रहण करता है; और जो अविवेकी होता है, वह अपने आपको ज्ञानी तथा महापंडित समझकर प्रेय की तथाकथित चमक-दमक से प्रभावित होकर उसे ग्रहण कर लेता है एवं परिणाम-स्वरूप अंधे की भांति इधर-उधर भटकता रहता है। वह मनुष्य धन, ऐश्वर्य, भोग-वासना के मायाजाल में वद्ध होकर मूढ़ तथा मदमत्त हो जाता है। परम रमणीय अनिंद्य, सुन्दर, श्रेष्ठ पथ को देखने के लिये वह अपनी दिव्य दृष्टि निक्षेप में असफल रहता है। वह सोचता है कि उपलब्ध भोग सामग्री ही परम काम्य एवं सुखद तथा आनन्ददायी है। परिणामस्वरूप वारम्वार जन्म लेकर मेरे अधीन रहता है।

हे नचिकेता ! मैं तुम्हारी बुद्धि एवं त्यागवृत्ति देखकर वहुत प्रभावित हुआ हूँ। मैंने तुम्हें वारम्वार प्रलोभित किया, किन्तु तुम अपने संकल्प पर अडिग रहे। तुमने अतीव गहराई से सूक्ष्म निरीक्षण किया और मेरे द्वारा प्रस्तावित राज्य, धन, ऐश्वर्य तथा कामना, भोग, वासना के मायाजाल में आवद्ध नहीं हुए। अतः तुम बुद्धिमान प्राज्ञ हो। तुमने जो ज्ञान प्राप्त किया है, वह तर्क से सुलभ नहीं होता, तुम समुचित रूप से सत्य में दृढ़निष्ठ हो। तुम जैसे प्रश्नकर्त्ता मुझे सदैव प्राप्त होते रहें, मेरी यह कामना है।"

वस, आज यहीं तक बेटा ! अगले दिन से हम व्रह्मत्व की ओर वढ़ते रहेंगे।

तुम प्रभुपद रेणु-प्राप्त करो !

आशीर्वाद के साथ,
वावा

पत्र संख्या – २३

चि० भुलु !

मंगलानुशासनम् ।

ईश्वरानुग्रह से तुम्हारी पढ़ाई ठीक चल रही होगी ।

उस दिन देखा है न, कि यमराज नचिकेता के गुणों से प्रभावित होकर उसे ब्रह्मज्ञान प्रदान करने के लिये प्रस्तुत हो गये हैं ।

यमराज की प्रसन्नता देखकर नचिकेता ने कृतज्ञतापूर्वक कहा – "राजन् ! मैं जानता हूं कि धन सम्पत्ति स्थायी नहीं है। अतः अस्थायी वस्तु से अविनाशी, शाश्वत वस्तु की प्राप्ति नहीं हो सकती है। इसलिये मुझे स्वर्ग की आधारभूत नचिकेतारूप अग्नि आपसे प्राप्त हुई है।"

तब यम ने कहा – "हे वत्स ! तुम धृति-वुद्धि में पारंगत हो। तुमने विश्व की समस्त अपार्थिव सम्पद को अपने अधिकार में आती देखते हुए भी दृढ़ता से परित्याग किया है। शाश्वत देव का आध्यात्म प्रच्छन्न पुरातन गूढ़ अतिसूक्ष्म है जो कि **योग** के प्रभाव से कठिनाई से अनुभव किया जाता है; अथच हमारे मानव-मंदिर में स्थित है, यह जानकर मनुष्य शनैः शनैः हर्ष-शोक का परित्याग कर देता है। मनुष्य इस **"आत्मतत्व"** को जानकर, सुनकर जब सम्यक्-बोध कर लेता है, सूक्ष्म आत्मतत्व को शरीर से पृथक् मानकर प्राप्त कर लेता है, तब वह आनन्दमय हो जाता है, क्योंकि उसने आनन्द की वस्तु प्राप्त ही कर ली है। हे, नचिकेता ! मैं देख रहा हूं तुम स्वयं ही एक ब्रह्म-भवन स्वरूप हो। तुम्हारे लिये मोक्षद्वार खुला है, अर्थात् तुम मोक्ष प्राप्त करने के योग्य हो।"

नचिकेता ने कहा – "हे भगवन् ! यदि मैं परम श्रेय आत्मतत्व सुनने के योग्य हूं और आप मेरे प्रति प्रसन्न हैं तो कृपया यह बताइये कि जिसको आप धर्म से पृथक्, अधर्म से पृथक्, सृष्ट से पृथक्, असृष्ट से पृथक् और भूत एवं भविष्य से भी भिन्न मानते हैं, वह क्या है ?"

बेटा ! अब ज्ञात हुआ न ? शिशु ने आत्मतत्व के विषय में कितना सुन्दर तथा व्यापक प्रश्न किया है ? मनुष्य मानवधर्मी है। मन, बुद्धि अहंकार-मूलक यह शरीर धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, जन्म-मृत्यु तथा

भौतिक जगत के कार्यक्रमस्वरूप विविध प्रपंचों के नियंत्रण में रहता है। किन्तु आत्मा या ब्रह्म इन सबसे निर्लिप्त, अतीत, स्वतंत्र व मुक्त है।

बस, आज यहीं तक भुलु! अगले दिन देखोगे—आत्मतत्व तथा ब्रह्म विषयक यमराज-मुख-निःसृत वाक्यों से क्या अमृतमय वाणी निकली है?

भगवान तुम्हें आत्मनिष्ठ करें!

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्र संख्या – २४

चि० भुलु!

मंगलानुशानम्।

दयामय भगवान की अनुकम्पा से तुम सफलतापूर्वक परीक्षा दे रही होगी।

उस दिन के पत्र को पढ़कर तुम उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करती होगी कि ब्रह्म के विषय में यमराज ने क्या ज्ञानामृत, नचिकेता को पान कराया है?

बेटा! मृत्यु अधिपति यमराज ने कहा—"हे नचिकेते! समस्त वेद जिसकी महिमा वर्णन करते हैं, जिसका तप सभी करते हैं, जिसकी प्राप्ति के लिये मनुष्य ब्रह्मचर्य व्रत पालन करते हैं, उस प्राप्तव्य वस्तु के विषय में तुम्हें संक्षेप में बताता हूं कि वह है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥
कठोपनिषद् अध्याय १ वल्ली २ श्लोक १५

ॐ यह अक्षर ही ब्रह्म है। इस उपास्य ब्रह्म (अक्षर) को जान लेने पर मनुष्य जो चाहे प्राप्त कर सकता है.—यही सर्वोत्तम आलम्बन है। यह आलम्बन उच्चतम और अपरूप है। इस आलम्बन को जानकर साधक ब्रह्मलोक अर्थात् परब्रह्म में स्थित होकर महिमान्वित हो जाता है।

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न वभूव कश्चित् ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ।
उभौं तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥

कठोपनिषद् अध्याय १ वल्ली २ श्लोक १८-१९

यह ज्ञानवान आत्मा न तो जन्म लेती है न इसकी मृत्यु होती है। न यह कहीं से आई है और न कहीं अवस्थित है। यह अज, अर्थात् जन्मरहित, नित्य-शाश्वत, चिरस्थायी और पुरातन है। देहावसान के बाद भी नष्ट नहीं होती, अर्थात् अनहतित है। अज्ञानी व्यक्ति ही सोचता है कि उसने हत्या कर दी है, वह हत हो गई है, एवं वह स्वयं को हत समझता है, किन्तु आत्मा न मरती है न मारती है।

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ॥

आत्मा अणु से भी अणुतर, महान से भी महत्तर है। यह जीव की हृदयरूपी गुफा में स्थित है। जब मनुष्य स्वयं को काम-वासनादि संकल्प से और शोक, ताप, दुःख, दैन्य आदि विकारों से दूर अर्थात् अछूत रखता है तब वह आत्मा की महिमा के दर्शन कर पाता है। वह स्थित होते हुए भी दूर-दूर तक पहुंच जाती है। शयन करते हुए भी सर्वत्र पर्यटन करती है। उस हर्षमय और हर्षातीत देव को भला मेरे अतिरिक्त और कौन जान सकता है ?

हे ब्राह्मण बालक ! जो सशरीर होते हुए भी अशरीरी और अनित्य होते हुए भी नित्य स्वरूप है उस महान एवं सर्वव्यापक आत्मा को जानकर अर्थात् साक्षात्कार करके "यह मैं ही हूँ" जानकर विवेकी मनुष्य शोकातीत रहता है। क्योंकि इस प्रकार आत्मवेत्ता में शोक उपस्थित होने का प्रश्न ही नहीं उठता।"

बेटा ! आगे और भी कितनी सुन्दर प्रांजल भाषा में आत्मा के विषय में यमराज ने बताया है, मैं उसमें से एक श्लोक यहां उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ – इसलिये वह लिख रहा हूँ तुम इस श्लोक को कंठस्थ कर लेना। "संस्कृत" देव भाषा

मानी जाती है। उच्चादरण, छंद कितने मधुर-मनमुग्धकर हैं। यदि तुम स्वर एवं लय के साथ छंद मिलाकर संगीत की भांति गाती रहोगी तो तुम्हें अनिर्वचनीय आनंद प्राप्त होगा।

श्लोक –

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष
आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥
(प्र० अ० वल्ली २ श्लोक २३)

"यह आत्मा असंख्य शास्त्रज्ञ, ज्ञानी होने या सुन्दर-सुन्दर प्रवचनों तथा व्याख्यान सुनने से प्राप्त होने के योग्य नहीं होती, जो साधक अपनी आत्मा को वरन् अर्थात् उसकी प्रार्थना करता है उसे वरण करने वाली आत्मा द्वारा ही वरण की जाने वाली आत्मा जानी जाती है।"

जो अन्याय, अविचार, दुष्कर्म तथा पाप कर्मों से निवृत्त नहीं हुआ है, जिसका मन चंचल, अस्थिर, इंद्रियासक्त हो वह ज्ञान द्वारा आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकता।

ज्ञानवान्, धर्म रक्षक, ब्राह्मण और शौर्यशाली राष्ट्र-रक्षक क्षत्रिय अर्थात् ज्ञान और शौर्य जिस आत्मा के भोज्य पदार्थ भात तथा अन्न सदृश हैं और मृत्यु तो उसके लिये शाक-मसाले के समान हैं अर्थात् भोजन के लिये भी पर्याप्त नहीं हैं, उस सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान आत्मा को कौन जान सकता है?

बस, आज यहीं तक। अगली बार हम लोग और आगे बढ़ेंगे।

भगवान तुम्हें पूर्ण सफलता दें!

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्र संख्या – २५

चि० भुलु !

मंगलानुशासनम् ।

बेटा ! उस दिन के पत्र में तुमने अनुधावन किया होगा कि यमराज ने अब तक विद्या और अविद्या का पार्थक्य भेद एवं आत्मा की स्थिति के विषय में बताया है। आज हम लोग देखेंगे – आत्मा की तुलनात्मक व्याख्या।

उस दिन की चल रही बात का प्रवाह चालू रखते हुए यमराज ने कहा– "नचिकेतन् ! :–

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ।।
(प्रथम अध्याय तृतीय वल्ली श्लोक ३)

अर्थात् तुम शरीर को रथ समझो जो कि अश्व-रूप इंद्रिय-समूह द्वारा खींचा जाता है और रथ के स्वामी व मालिक हैं – अन्तरात्मा। इस रथ को बुद्धिरूप सारथी मनरूप लगाम पकड़कर चलाता है, किन्तु दुष्ट घोड़े जैसे सुनिपुण सारथी का निर्देश अमान्य करके उछल-कूद, उद्दण्डता मचाते हैं, वैसे ही अज्ञानी, अविवेकी, इंद्रियासक्त मनुष्य हमारे बुद्धिरूप सारथी का निर्देश अमान्य करके नाना विपत्तियों में फंस जाते हैं, परन्तु जो संयत, एकाग्रचित्त, प्राज्ञ, पवित्र, इंद्रियों को अपने वश में रख सकते हैं वे उत्तम अनु-शासनशील अश्व के समान आज्ञाकारी होकर लक्ष्य अर्थात् भगवान विष्णु के परम पद को प्राप्त कर लेते हैं, क्योंकि इंद्रियों से उनके विषय श्रेष्ठ हैं। इंद्रियों के विषयों से मन उच्चतर है। मन से बुद्धि उच्चतर है। और बुद्धि से आत्मा महान श्रेष्ठ है। एवं महान आत्मा से अव्यक्त अर्थात् मूल प्रकृति श्रेष्ठ है। और मूल प्रकृति से पुरुष उच्चतर है, क्योंकि पुरुष उच्चता की पराकाष्ठा है। वह ही हमारा अंतिम लक्ष्य है। यह पुरुष ब्रह्मा से लेकर समस्त जीवों के अन्दर प्रच्छन्नरूप से रहता है। सूक्ष्म बुद्धि और सूक्ष्म दृष्टि से ही आत्मा का दर्शन होता है। अविद्या के मायाजाल में वेष्टित जीव इस महान दर्शन से वंचित रहता है, अतः हे मूढ़, अविवेकी !

अज्ञान की प्रगाढ़ निद्रा से जागो और परमश्रेष्ठ पुरुष को खोज करके उनसे ज्ञान-चक्षु प्राप्त करो, क्योंकि तत्वदर्शी लोगों ने उस पद को अति दुर्गम, अनतिगम्य, छुरे की धार की तरह तीक्ष्ण बताया है।"

बेटा ! वीर सन्यासी स्वामी विवेकानंदजी राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक पराधीनता से शृंखलित भारतीय युवा-समाज को शृंखला से मुक्ति के लिये यमराज की उक्त उक्ति के आधार पर निम्न श्लोक द्वारा अनुप्राणित करते थे।

इस श्लोक से मनुष्य के रोम-रोम में वीरता स्वरूप वह्नि उद्वेलित हो उठती है :–

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।।

(प्र० अ० तृतीय वल्ली, श्लोक १४)

"हे बाल तपस्वी नचिकेता ! उनमें न शब्द है, न स्पर्श है, न क्षय है, न गंध है। वह नित्य, शाश्वत, अनन्त, स्थिर, उच्चतर है। उनके दर्शन से जीव मृत्यु के मुख से मुक्त हो जाता है।"

बिटिया ! मृत्युदेव द्वारा वर्णित नचिकेता संबंधित इस सनातनमय उपाख्यान को जो ब्राह्मण अर्थात् ज्ञानवान् मनुष्य श्रवण करते हैं और जो मनुष्य शुद्ध, पवित्र होकर इस परम आत्मरूप रहस्य को ज्ञानियों की सभा में व्यक्त करते हैं, वह अनंत सत्ता को प्रदान करने वाला होता है।

बस आज यहां तक बेटा ! यमराज से बालक नचिकेता ने परम गुह्य – ब्रह्म-तत्त्व जो कि अनादि काल से जिज्ञास्य था, निकालकर मुमुक्षुजनों की क्षुधा-निवृत्ति की है। आत्मतत्त्व के पश्चात् "आत्मा सर्वव्यापक" सम्बन्ध में उन्होंने नचिकेता को बताया है, जो आगे हम लोग लाभ उठा पायेंगे।

भगवान तुम्हारी स्मृति शक्ति तेज करें !

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्र संख्या – २६

चि० भुलु !

मंगलानुशासनम् ।

भगवान की कृपा से तुम स्वस्थ एवं प्रसन्न होगी।

बिटिया ! उस दिन परम गुह्यतम ब्रह्म के विषय में लिखा था। आज उनकी व्यापकता के संबंध में यमराज की व्याख्या का अंश लिख रहा हूँ।

यमराज ने कहा – "नचिकेता ! परमात्मा द्वारा गठित इस शरीर के मुख्य इंद्रिय-समूह – आंख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा – बहिर्मुखी हैं, इस हेतु बाहर के रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श के महक में अभिभूत होकर न अन्तरस्थ आत्मा के अनिंद्य सुन्दर रूप के दर्शन कर पाते, न उनकी अमृतमय वाणी सुन पाते, न उनके परम शीतल स्पर्श-सुख का अनुभव कर पाते, न पारिजात सदृश सुवास ग्रहण कर पाते, न मृत-संजीवनी सुधा-सदृश अविरल प्रवाहित रस का स्वाद ग्रहण करते हैं। ऐसे विवेकी आत्मज्ञ विरले ही व्यक्ति होते हैं जो अपनी इंद्रियों को अन्तर्मुखी करके अन्तरस्थ सर्व परिज्ञात आत्मा को इंद्रियों द्वारा उपलब्ध कर लेते हैं।"

"हे ब्राह्मण-तनय ! जो मुमुक्षु अनादि, अनन्त भूत, भविष्य के ज्ञाता ब्रह्म को जो कि जलादि भूतों से पहले, उत्पन्न हुआ है, उसको अपनी आत्मा में देखता है वह सत्यदर्शी ऋषि है। **उस दर्शित अरूप के रूप ही ब्रह्म हैं, जिनको तू जानना चाहता है।**

हे बालक ! देव-समाज की माता अदिति जो भूतों से समन्वित होकर उत्पन्न हुई है, वह ब्रह्म है। गर्भवती मां गर्भस्थ-शिशु को अति सावधानता के साथ सब के अलक्ष्य में रखती है, उसी प्रकार ज्ञान तथा यज्ञाग्नि यज्ञ-काष्ठ के अन्दर रहती है। जो यज्ञाभिलाषी मनुष्य प्रतिक्षण उनकी स्तुति करते रहते हैं, **वही तुम्हारा प्रार्थित ब्रह्म है।**

सूर्य जहां से उदित होता है और जहां अस्त हो जाता है। जहां समस्त देवता प्रतिष्ठित हैं जिसका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता है, **वह ही ब्रह्म है, जो तुम खोज रहे हो।"**

"हे बालक ! जो तत्त्व देहेन्द्रिय संघात में भासता है वह अन्यत्र देहादि से परे भी है। जगत में कुछ भी ऐसा नहीं है जो यथार्थरूप में विभक्त है। मरणधर्मी मानव ही इस तत्त्व में पृथकत्व देखते हैं।"

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वै तत् ।।
अगुंष्ठमात्र पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः ।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः ।। एतद्वै तत् ।।

कठोपनिषद् अध्याय २ वल्ली १ श्लोक १२-१३

"हे ब्रह्मतत्त्व-मुमुक्षु बालक ! अंगूठे के समपरिमाण पुरुष को, जो हमारे शरीर के अभ्यंतर हृदय में स्थित है, उसे भूत, भविष्यत् काल के शासक जानकर ही ज्ञानी व्यक्ति अपने को सुरक्षित रखने की इच्छा नहीं करता। वह निर्धूम प्रज्वलित अग्नि के सदृश है—वह भूत, भविष्यत् का प्रभु है। केवल वह ही आज है और वह ही कल रहेगा। **यही वह ब्रह्म है—जिसे तुम खोज रहे हो।**

जिस प्रकार वर्षा का जल उच्च स्थान से निम्नाभिमुखी प्रवाहित होकर चारों ओर फैल जाता है उसी प्रकार आत्मा एक होते हुए भी भिन्न-भिन्न रूप में मनुष्य अनेक रूप में दर्शन करते हैं। परन्तु शुद्ध जल में डाला हुआ जल जैसा था बैसा ही बना रहता है। इसी प्रकार हे गौतम ! वैज्ञानिक आत्मज्ञ मुनि ही ब्रह्म की एकरूपता को जानता है।"

बस, आज यहीं तक बेटा ! उनकी व्याख्या आगे भी जारी रही है, सो अगले दिन वह अंश लिखूंगा।

भगवान तुम्हारा कल्याण करें !

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्र संख्या – २७

चि० भुलु !

मंगलानुशासनम्।

परम मंगलमय ईश्वर के अनुग्रह से तुम प्रसन्नतापूर्वक कर्त्तव्य निभा रही होगी।

बेटा ! उस दिन का असमाप्त व्याख्यांश आज लिख रहा हूँ।

यमराज ने कहा – "हे नचिकेत्! ब्रह्म अत्यन्त दुर्विज्ञेय है तो भी तुम्हारी ज्ञान पिपासा को देखते हुए बता रहा हूं कि नित्य अजन्मा आत्मा दो आंखें, दो कान, दो नासारन्ध्र, एक मुंह, ये सात मस्तिष्क के, और निम्न भाग में नाभि, मलद्वार, इंद्रिय द्वार तथा सर्वोपरि ब्रह्मरंध्र, ये ११ द्वार वाले पुरी अर्थात् देह में निवास करते हैं।

वत्स ! वह आत्मा क्या नहीं है ? पवित्र सरोवर में निवास करने वाला हंस है, अन्तरिक्ष जगत में विचरण करने वाला सर्वव्यापक वसु अर्थात् वायु है। यज्ञवेदी पर स्थित होता अग्नि है। और कलश में स्थित अतिथि सोम है। वह मनुष्य में है, श्रेष्ठ अर्थात् देवों में है। ऋत अर्थात् धर्म में है, जो कुछ जल से, पृथ्वी से, पर्वतों पर उत्पन्न होता है, सब वही है। वह सत्य है, बृहत् है।

वह वही है जो प्राणों को ऊपर की ओर उठाते हैं और अपान को नीचे की ओर धकेलते हैं, वह हृदय केन्द्र-बिन्दु में वामन अर्थात् अंगूठे-परिमाण में स्थित है। जो सब देवों के भी उपास्य हैं। मनुष्य शरीर से जब आत्मा निर्गत हो जाती है, तब यह शरीर निष्क्रिय हो जाता है, आत्माहीन शरीर का क्या मूल्य रहता है ?

हे बालक ! मरणधर्मी मनुष्य न प्राण से जीवित रहता है, न अपान वायु से, बल्कि यह उसी तत्व से जीवित रहता है, जिससे दोनों अपना अस्तित्व रखते हैं।

जब मनुष्य को उनकी अवस्थिति तथा अस्तित्व संबंधित ज्ञान प्राप्त हो जाता है तब बाहर के शोक-ताप तथा विविध कर्म में मनुष्य शरीर रत रहते हुए भी आत्मज्ञ कर्म-बंधनजनित शोक-ताप से मुक्त रहता है, वही तुम्हारा प्रार्थित ब्रह्म है।"

बस, आज यहां तक। अगले दिन और भी रहस्यपूर्ण बातें जान सकोगी।

प्रभु तुम्हें अपार शक्ति दें !

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्र संख्या – २८

चि० भुलु !

मंगलानुशासनम् ।

प्रभु की अनुकम्पा से तुम स्वस्थ एवं प्रसन्न होगी ।

बिटिया ! पिछले पत्र में असमाप्त आत्मतत्व का विषय जारी रखते हुए लिख रहा हूं ।

यमराज ने कहा – "हे बालक ! अब मैं तुम्हारे लिये अति गुह्य अर्थात् गुप्त-रहस्यमय सनातन ब्रह्मतत्व का वर्णन करूंगा, और साथ-साथ तुम्हारे तीसरे प्रश्न का, मूल मरणोपरांत आत्मा की दशा का, भी ।

नचिकेत् ! कुछ देहधारी तो अपने कर्मों और ज्ञानानुसार मातृ-गर्भ में प्रवेश करते हैं, अर्थात् जन्म लेते हैं और कुछ अचल पदार्थ अर्थात् वृक्ष, वनस्पति आदि में परिणत होते हैं। शयन के पश्चात् भी जो मनुष्य अपने आकांक्षित पदार्थ-समूह की रचना करते रहते हैं – **वह ब्रह्म है, अमृत है** । और इससे ही समग्र लोग प्रतिष्ठित तथा आश्रित हैं । कोई भी उसका उलंघन नहीं कर सकता । यह ही **वह है, जिसकी तुम खोज कर रहे हो ।"**

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।। ९ ।।
वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।।१०।।
सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ।।११।।

कठोपनिषद् अध्याय २ वल्ली २

"हे ऋषि-पुत्र ! जिस प्रकार सम्पूर्ण विश्व में एक ही अग्नि है, किन्तु वह उसी रूप में रूपान्तरित होता रहता है, जिस रूप से वह मिलता है । इसी प्रकार एक ही आत्मा विभिन्न प्रकार के समस्त जीवों के अन्दर है । अर्थात् तुम विश्व में जितने प्रकार के प्राणी देखते हो, उन सबके अन्दर आत्मा विराज रही है, और साथ-साथ बाहर में भी । जिस प्रकार रूपहीन एक ही वायु समग्र विश्व में प्रवाहित हो रही है, उसी प्रकार एक ही आत्मा विभिन्न रूपों वाले



जीवों के अन्दर है एवं बाहर भी है। जिस प्रकार सूर्य समग्र जगत् का नेत्र स्वरूप होते हुए भी देखने वालों के नेत्र के वाह्य-दोष से दूषित नहीं होता, उसी प्रकार एक ही आत्मा समग्र जीवों के अन्दर रहते हुए भी जीवों के सांसारिक दुःख तथा कलुषता से कलुषित नहीं होती। क्योंकि वह शोक-ताप, दुःख, दैन्य, हर्ष-उल्लास सब से परे है।

जो एक, सब जीवों को अपने अधीन रखने वाला एवं एक शांत आत्मा एक रूप को ही अनेक प्रकार बना लेती है, जो अनित्य में नित्यस्वरूप है और अनेक चेतनों में एक चेतन है एवं एक होते हुए भी अनेक प्रकार कर लेता है। उस आत्मदेव को जो धीर, स्थिर, शांत, बलवान् मनुष्य दर्पण में प्रतिबिंब की तरह अपने हृदय-अभ्यन्तर में देखता है, उसको सुख तथा परमानंद प्राप्त होता है।

वह एक ऐसा अनिर्वचनीय सुख है, जो न व्यक्त किया जा सकता, न प्रतिपादित किया जा सकता है। वह केवल अनुभव ही किया जा सकता है। अतः हे बालक! मैं तुम्हें कैसे प्रत्यक्ष करवा सकता हूं कि **'वह यह है'**।"

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतो भाति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

कठोपनिषद् अध्याय २ वल्ली २ श्लोक १५

"वत्स! उस आत्म-लोक में दिवाकर प्रकाशित नहीं होता, चन्द्र की स्निग्ध ज्योति निस्तेज, अप्रकाशित रहती है। सब तारे भी नहीं चमकते और विद्युत-छटा तथा कोई पार्थिव अग्नि भी दिखाई नहीं देती, क्योंकि हे बालक! विश्व में जो कुछ प्रकाशवान् है, वह सब तो उनके प्रकाश के प्रतिबिंब मात्र ही हैं। उनके प्रकाश से ही तो सब कुछ प्रकाशित होता है।"

बस, आज यहां तक, बेटा! तुम उपर्युक्त श्लोक कंठस्थ कर लेना। कितना सुन्दर श्लोक है वह? ब्रह्मज्ञान के सम्बन्ध में तुमने बहुत कुछ जान लिया होगा। अगले दिन देखोगी—यमराज ने अंतिम चरण में क्या कहा है।

भगवान तुम्हें आत्मनिष्ठ करें!

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्र संख्या – २६

चि० भुलु !

ईश्वरानुग्रह से तुम सफलतापूर्वक परीक्षा दे रही होगी।

बेटा ! यमराज ने ब्रह्म तत्व प्रसंग चालू रखते हुए कहा, "हे बालक नचिकेत् ! तुम जिस ब्रह्म के विषय में जानना चाहते हो वह सनातन अर्थात् अनादि, अश्वत्थ वृक्ष है, जिसका मूल ऊपर की ओर तथा शाखाएं नीचे की ओर हैं। वह विशुद्ध ज्योतिस्वरूप ब्रह्म है। अमृत है। समग्र चराचर-विश्व उसी में आश्रित है। कोई भी उसका अतिक्रमण नहीं कर सकता। यह सम्पूर्ण जगत प्राण-ब्रह्म में उद्‌बुद्ध हुआ है और इसी से गति करता है। वह ब्रह्म महाकाल रूप उठे हुए वज्र के समान है। जो उसे जानते हैं वे अमर हो जाते हैं। इनके भय अर्थात् प्रभाव से अग्नि प्रज्वलित होती है, सूर्य उष्णता प्रदान करता है, इन्द्र, वायु और मृत्यु अपने-अपने मार्ग में भागते रहते हैं अर्थात् कर्त्तव्य सम्पन्न करते हैं।

यदि इस मानव-लोक में मानव देह ध्वंस होने के पहले अर्थात् मृत्यु के पूर्व ब्रह्म को जानने में समर्थ हो तो संसार-बंधन से मानव मुक्त हो जाता है। नहीं तो जन्म-मरणशील लोक में शरीर धारण करते रहते हैं। जिस प्रकार दर्पण में अपना प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है उसी प्रकार निर्मल, पवित्र बुद्धि से आत्मा का दर्शन होता है। स्वप्न, पितृलोक तथा गंधर्व-लोक और जल में तो ब्रह्म का भान अर्थात् अस्पष्ट ही दिखाई पड़ता है। किन्तु ब्रह्मलोक में तो छाया और प्रकाश समान ही प्रतीयमान होता है। धीर, स्थिर, शांत मनुष्य इंद्रियों की विभिन्नता, उत्पत्ति और प्रलय को जानकर सुख-दुःख, शोक-ताप से स्वयं को मुक्त रखता है।"

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम्।
सत्तादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम्॥
कठोपनिषद् अध्याय २ वल्ली ३ श्लोक ७

"हे ऋषितनय ! इन्द्रियों से मन, मन से बुद्धि, बुद्धि से आत्मा और महान आत्मा से अव्यक्त, उच्चतर है परन्तु अव्यक्त से ऊपर अर्थात् सर्वोच्च है—"पुरुष"। यह व्यापक, अलिंग, अरूप है—

जिसको जानकर मनुष्य मुक्त अर्थात् अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। ब्रह्म का रूप या स्वरूप साधारण मनुष्य की दृष्टि-शक्ति से परे है। परन्तु उसके हृदय, मन और सम्यक् दर्शन की अभिव्यक्ति से दर्शन होते हैं।

यह स्थिति तब आती है जिस समय पंच-ज्ञानेन्द्रियां सौम्य, स्थिर हो जाती हैं। साथ-साथ मन की भी स्थिरता आ जाती है एवं बुद्धि की क्रिया भी बन्द हो जाती है। इन्द्रियों की इस अविचल अवरुद्ध स्थिति को **"योग"** कहा जाता है। उस समय पुरुष सब तरह के प्रमादों से मुक्त रहता है, क्योंकि योग – स्थिति, उत्पत्ति और विनाश का – समरूप है।"

बस, आज यहीं तक। अगले दिन हम देखेंगे – अन्त में ब्रह्मरूप-महाप्रसाद का अंतिम स्वरूप क्या है?

ईश्वर तुम्हारी मेधाशक्ति वृद्धि करें!

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

पत्र संख्या – ३०

चि० भुलु।

मंगलानुशासनम्!

परम कृपालु भगवान की कृपा से तुम स्वस्थ और प्रसन्न होगी।

बेटा! आज अंतिम पत्र है। यमराज ने पूर्व प्रसंग जारी रखते हुए कहा :–

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते॥

द्वितीय अध्याय, तृतीय वल्ली, श्लोक – १२

बेटा! क्या सुन्दर श्लोक है? तुम तो इस श्लोक को भी भलीभांति कंठस्थ कर लेना। इसका तात्पर्य यह है कि "तब तक ब्रह्म को न वाणी से, न मन से, चक्षु से प्राप्त कर सकता है जब तक कोई ब्रह्मज्ञानी अर्थात ब्रह्म-साक्षात्कारी व्यक्ति नहीं बताता।"

जब मनुष्य ब्रह्म को 'वह है' उपलब्ध करता है, अनुभव कर लेता है तब ब्रह्म का सार-तत्त्व उसके सामने दिव्य रूप में प्रकट हो जाता है।

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्धयनुशासनम्॥
कठोपनिषद् अध्याय २ वल्ली ३ श्लोक १५

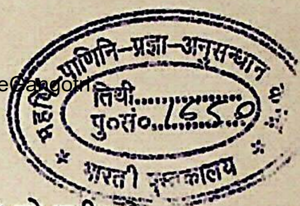
"जब मनुष्य हृदय में आश्रित कामना से स्थानच्युत होकर बाहर निकल जाता है अर्थात् यह मेरा शरीर है, यह धन-सम्पत्ति सब मेरा है, मैं सुखी हूँ, दुःखी हूँ आदि अविद्या-प्रसूत स्वार्थान्धिता नष्ट हो जाती है तब हृदय में ब्रह्म-भाव जागृत हो जाता है। मरण-शील मनुष्य को अमरत्व प्राप्त हो जाता है। अर्थात् मानवीय गुण में मनुष्य गुणान्वित होकर सब भूत-हित-रत हो जाता है।"

शतं चैका च हृदयस्य नाडयस्तासां मूर्धानमभिनिः सृतैका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति॥
कठोपनिषद् अध्याय २ वल्ली ३ श्लोक १६

"इस हृदय की १०१ नाड़ियां हैं उनमें से केवल एक नाड़ी मूर्द्धा अर्थात् मस्तिष्क से होकर बाहर निकली हुई है (सुषुम्ना)। इसके द्वारा मनुष्य की अन्तरात्मा अमर-धाम की ओर आरोहण करती है अर्थात् ब्रह्म-लोक में पहूँचकर अनुपम, अनाविल, सुन्दर पवित्रमय अमरत्व को प्राप्त करती है और बाकी अन्यान्य नाड़ियां मनुष्य को सांसारिक मायाजाल में आबद्ध करवाकर अनेक प्रकार की योनियों में भ्रमण करवाती हैं।"

अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः।
तं स्वाच्छरीरात् प्रवृहेन्मुंजादिवेषीकां धैर्येण।
तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति॥
कठोपनिषद् अध्याय २ वल्ली ३ श्लोक १७

"अंगूठे प्रमाण पुरुष-अन्तरात्मा सर्वदा जीव के हृदय में अवस्थित है। उसे तुम अपने शरीर से धैर्यपूर्वक इस प्रकार पृथक करके रखो जिस प्रकार मुंज से सींक को पृथक् किया जाता है अर्थात् शरीर आत्मा नहीं है। शरीर तो नाशवान मरणशील है, किन्तु आत्मा अजर-



अमर-शाश्वत-नित्य-सनातन है। यह समझ कर अपने को शरीर से पृथक् रखना ही अमरत्व है। **बालक उस आत्मा को तुम तेजोमय, अमृतमय जानो।"**

बेटा ! इस प्रकार नचिकेता ने मृत्यु अधिपति यमराज से ब्रह्म विद्या प्राप्त की और साथ-साथ सम्पूर्ण योग-साधन की विधि भी; एवं ब्रह्म भावना को जीवन का मूल आधार-स्वरूप ग्रहण करके मृत्यु रहित अजर अमर हो गया।

दूसरा भी अर्थात् जो कोई अध्यात्म तत्व को इस प्रकार प्राप्त करने की प्रचेष्टा करेगा व प्राप्त कर लेगा वह वैसे ही अमरत्व प्राप्त कर लेगा।

उपसंहार

उपसंहार में तुम्हें निम्न श्लोक अनुधावन करने हेतु उल्लेख कर रहा हूँ क्योंकि तुम विद्यार्थिनी हो :–

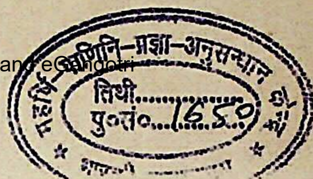
ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं
करवावहै । तेजस्वी नावधीतमस्तु ।
मा विद्विषावहै ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

यह श्लोक गुरु और शिष्य के साथ संबन्धित है। भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि गुरु-शिष्य एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों कदम के साथ कदम मिलाकर एक साथ चलते हैं। गुरु का ध्येय रहता है कि शिष्य विद्या तथा ज्ञान-गरिमा में हमसे पीछे नहीं रहे। वरन आगे बढे। इस ध्येय से ही गुरु के प्रति शिष्य की समर्पण भावना जाग्रत होती हैं। गुरु चरणों में बैठकर अपरिसीम श्रद्धा रखते हुये नम्रता के साथ आत्मनिष्ठ होकर ज्ञान अर्जन का उदाहरण विश्व में अन्यत्र कहीं भी नहीं है बेटा ! किन्तु पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव में हमारी गुरुकुल प्रथा आजकल समाप्ति की ओर है।

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी शान्तिनिकेतन में हमारे प्राचीन प्रथा को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया था। पेड़ के नीचे शान्त प्राकृतिक शोभा के अन्दर साधारण धोती-कुर्त्ता से विभूषित अध्ययन और अध्यापन में रत कक्षाओं के बारे में एक बार सोचो ! विशेष शुभ्र श्वेत दाड़ी मूछों से सुशोभित सौम्य मुख मण्डल, सिरपर धवल केश, ज्योतिर्मय आँखें, उन्नत ललाट, दीर्घ काय, धोती-कुर्ता की सादी पोषाक में बैठकर गुरुदेव की कक्षा लेने का चित्र एक बार मानस नेत्र में देख लो। ऐसी थी प्राचीन भारत की शिक्षण पद्धति। राजपुत्र से लेकर निर्धन-गरीब सन्तान भी गुरु आश्रम में रहकर ज्ञान अर्जन करते थे, जो ब्रह्मचर्याश्रम नाम से अभिहित है। इस आश्रम की ही देन है वेद-उपनिषद आदि महामृत।

विद्यार्थी जीवन वड़ा ही मूल्यवान है। आज के विद्यार्थी भविष्य के राष्ट्र के कर्णधार है। आदर्श ही मानव जीवन का प्रधान सम्पद व पाथेय है। तुम भी विद्यार्थिनी हो और आदर्श के बारे में तुम्हें सम्यक्



रूप में मालूम है। उपरोक्त श्लोक का भावार्थ है—परमात्मा, हम गुरु एवं शिष्य की, साथ-साथ रक्षा करें और साथ-साथ पालन करें। हम अपनी विद्या से अधिक वीर्य-सामर्थ्य को साथ-साथ अर्जन करें। हमारा अध्ययन लब्ध ज्ञान अतीव तेजस्वी अर्थात शौर्यवान हो। हम गुरु शिष्य परस्पर एक दूसरे को भलीभांति समझें। अध्ययन या अध्यापन में प्रमादस्वरूप अर्थात गलती से किसी प्रकार की त्रुटि के कारण परस्पर एक दूसरे को दोषावह करके परिवेश को दूषित न करें। यही शान्ति का आधार है।

बिटिया ! तुम्हारे उपनिषद् के विषय में उत्थापित प्रश्न को लेकर जो कठोपनिषद् का आख्यान पत्रावलि द्वारा आरंभ किया था, आज इस पत्र के साथ समाप्त हुआ है। जहां तक संभव हुआ, मैंने प्रत्येक श्लोक की व्याख्या प्रकट करने की प्रचेष्टा की है। तुम तो संस्कृत एवं दर्शन की छात्रा हो, तुम बड़ी सौभाग्यवती हो। क्योंकि इन दोनों विषयों के साथ हमारे अर्थात् भारतीय जीवन-सम्पद ग्रथित है। संस्कृत तो समग्र भारतीय भाषाओं की जननी है। इसको देवभाषा भी माना जाता है और उपनिषद् तो वेद के निचोड़ तत्त्व हैं। उपनिषद् के विषय में, मैंने तुम्हें दूसरे पत्र में संक्षिप्त रूप में लिखा था। तुमने इस वर्ष स्नातक कक्षा की अंतिम परीक्षा दी है, दोनों विषय में जो ज्ञान अर्जित किया है, वह इस पत्रावलि के द्वारा और भी प्रगाढ़ करके नचिकेता की तरह ब्रह्मज्ञान पूर्ण कर लो। यदि कोई त्रुटियां दिखाई दें तो वह मेरी हैं। तुम संशोधन कर लेना।

भगवान तुम्हारी आकांक्षा पूर्ण करें !

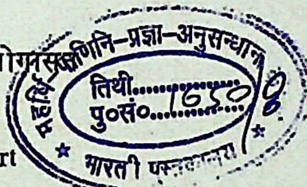
ओम् सहनाववतु !

आशीर्वाद के साथ,
बाबा

का

प्रकाशित पुष्प समूह

1. योगासन चार्ट
2. यौगिक षट्कर्म
3. प्राणायाम
4. स्वास्थ्य और योगासन
5. योग साधना
6. Yogasan Chart
7. Yogic Shatkarma
8. Pranayama
9. Health and Yogasana
10. Yog Sadhna



शीघ्र प्रकाशित होने वाले कतिपय अन्य पुष्प समूह

1. Diabetes Through Yog
2. योग से मधुमेह चिकित्सा
3. दमा और योग
4. ब्रह्मचर्य
5. ध्यान योग
6. कुण्डलिनी शक्ति
7. पत्रों में महाभारत

पराजयका अपनी सरकार अथवा उसके
ख़िलाफ जनमत संग्रह माननेको तैयार
हरियाणामें पार्टीकी हारके बाद फिरसे
प्राप्त करनेकी विपक्षकी मांगको ठुक
उन्होंने कहा है कि मैं यह नहीं मा
हरियाणाका चुनाव परिणाम मेरी सरकार
उसके कार्योंके खिलाफ जनादेश है।

प्रधान मंत्रीने एक फ्रांसीसी पत्रकार
भेंटमें कहा है कि भारतीय अर्थव्यवस्था

देवीलाल

(लखनऊ कार्यालय)

लखनऊ, १ जुलाई। उत्तर प्रदेशके देवी
बननेका सपना संजोये श्री मुलायम सिंह य
जो रणनीति तैयार की है उसको आज उस
गहरा आघात लगा जब उसके मोर्चेमें श
जनता पार्टीके आठ सदस्योंने विधान
बहिष्कार करनेका निर्देशोंको अनसुना क
यही नहीं विधानसभामें जनता पार्टीके उपने
रघुवर दयाल वर्माने ७ जुलाईको
विधायकोंकी एक बैठक आहूत की है तथ
वरिष्ठ विधायक श्री मैनेजर सिंहने पार्टी अ
श्री चन्द्रशेखरसे अनुरोध किया है कि विध
दलके नेता श्री रेवती रमण सिंहको श्री मु
सिंह यादवके बंधुआ मजदूरकी तरह अ
करनेसे रोके।

विधानसभासे निलम्बित ५२ सदस
निलम्बन समाप्त करानेका भी अभीतक
प्रयास शुरू नहीं हुआ है। श्री मुलायम
यादवकी अध्यक्षतामें आज लोकदल

मक ढांचेको सशक्त बनानेपर

च्छी स्थितिमें आज है, शायद ही कमी रही हो। देशनीतिके मामलेमें भी भारतने ठोस रुख बनाया है। घरेलू समस्याओंकी चर्चा करते हुए होंने कहा कि मेरी सरकारने अनेक समस्याएं लझा ली है। एक प्रमुख समस्या पंजाबकी भी बाकी है और लगता है कि उसी समस्या एवं भवतः पंजाब समझौतेके कारण हरियाणामें नको पराजयका सामना करना पड़ा।

उन्होंने कहा कि हमारी बड़ी समस्या पार्टीके घटनसे संबंधित है। हरियाणाकी पराजय भी मारी संघटनात्मक कमजोरियोंका ही परिणाम है।

श्री गांधीने कि पिछले दो चुनावों (१९७९ तथ फिर १९८०) से हम उनको लेकर सरकार बना रहे हैं जो हमारी पार्टीमें शामिल हो रहे हैं। मे ख्यालसे इन लोगोंके कारण हरियाणामें हमा पार्टीकी छवि सुधारनमें कोई मदद नहीं मिल इसके अलावा पार्टीके नेतृत्व संघटन तथा हम गांवोंमें बिखरे कार्यकर्ताओंके बीच भी को तालमेल नहीं रहा।

श्री गांधीने कांग्रेस (इ) की चर्चा करते हु कहा कि इसका संघटनात्मक चुनाव कराना बहुत जरूरी है। १९७२ से ही संघटनात्मक चुनाव नहीं बनाया जा सका। हमें अभी संघटनक बनाना है और इसकी इन कमजोरियोंको दू है।

यह पूछनेपर कि आपकी सरकार चीजकी जांच करानेके लिए अमेरिकी फ कहा जिसकी आज इतनी चर्चा चल प्रधान मंत्रीने कहा कि वस्तुतः हम यह न कि क्या अमेरिकी फर्मको किरायेपर लि था। ये सारे मामले आयोगके समक्ष रिपोर्ट मिलनेपर सबकुछ पता चल

नेका मुलायम सिंहका सपना

टूट रहा है

नता तथा दोनों कम्युनिस्ट पार्टियोंके धायकोंकी बैठक हुई। बैठकमें श्री मुलायम हने दो निर्देश दिये एक तो यह कि निलम्बन समाप्ति हेतु न तो पहल किया जायगा और न इसके लिए बुलायी गयी किसी बैठकमें भाग लिया जायगा। दूसरा यह कि मोर्चेके जो १८ सदस्य अभीतक सदनकी कारवाईमें भाग ले रहे हैं वे आज शेष सत्रके लिए उसका बहिष्कार करें।

जनता पार्टीके २० सदस्योंमेंसे आठ सर्वश्री रघुवरदयाल वर्मा, जनार्दनप्रसाद ओझा, एरीन्द्रनाथ तिवारी, निहाल सिंह, कमलकृष्ण पाण्डेय, रंजीत सिंह, मैनेजर सिंह तथा श्रीमती विजयलक्ष्मीने इस निर्देशके बावजूद आज पूरी कारवाईमें भाग लिया। लोकदल (ब) के जो दस सदस्य सदनसे निलम्बित नहीं है उनमेंसे भी किसीने आज बहिष्कारकी घोषणा नहीं की। प्रातःकाल विधायक दलकी बैठकमें लोकदल (ब) के उपनेता श्री रामशरणदासनेअब सदनकी बैठकमें भाग न लेनेसे जन समस्याओंकी उपेक्षा हो रही है ऐसा वक्तव्य दिया तो श्री मुलायम सिंह यादवने उन्हें डांट दिया।

बिहार विधानसभामें सरकारकी हार

पटना, १ जुलाई (भा.)। बिहार विधानमंडलमें आज उस समय विपक्षने बड़ी जीत दर्जकी जब दोनों सदनोंमें औरंगाबादके दलेलचक और बघौरा गांवमें हुई सामूहिक हत्याओंपर उसके कार्यस्थगन प्रस्ताव स्वीकार कर लिये गये।

इसके पूर्व पिछले तीन दिनोंतक कार्यस्थगन प्रस्तावको स्वीकार किये जानेकी मांगको लेकर विधानसभामें लगभग समस्त विधायी कार्य ठप रहा।

दिल्लीमें ऊंची इमारत मालिकोंको नोटिस

नयी दिल्ली, १ जुलाई (भा0)। दिल्लीकी ऊंची इमारतोंके मालिकों रहनेवाले लोगोंको कानूनी नोटिस ज कहा है कि वे तीन महीनेमें अग्नि उपायोंकी पर्याप्त व्यवस्था कर लें। करनेपर उनके विरुद्ध कारवाई की जाय